लीचिमा

राजभाषा पत्रिका

वर्ष 6 : अंक : 1 (2020)

भाकृअनुप
ICAR

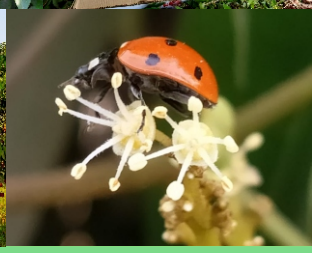

ISO 9001: 2015

राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुजफ्फरपुर

लीचिमा

राजभाषा पत्रिका वर्ष 6 : अंक 1

भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र
मुशहरी फार्म, मुजफ्फरपुर 842002 बिहार
ई–मेल : nrclitchi@yahoo.co.in
वेबसाइट : https://nrclitchi.icar.gov.in

भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र
मुशहरी फार्म, मुजफ्फरपुर 842002 बिहार

लीचिमा

राजभाषा पत्रिका

वर्ष 6 : अंक 1 (2020)

संरक्षक एवं प्रकाशक
डॉ. शेषधर पाण्डेय
निदेशक

अस्वीकरण

लीचिमा पत्रिका में प्रकाशित तथ्यात्मक लेखों के लिए लेखक ही उत्तरदायी हैं न की भा.कृ. अनु.प. – राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर के प्रकाशक, संरक्षक या प्रकाशन समिति। उपयोगकर्ताओं को सलाह दी जाती है की लीचिमा पत्रिका में दी गयी जानकारियों को उपयोग में लाने से पहले किसी विशेषज्ञ से विचार–विमर्श करें/सलाह लें। पत्रिका में सुधार एवं परिपक्वता हेतु सुझाव आमंत्रित है।

राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुजफ्फरपुर

प्रधान संपादक

डॉ. अभय कुमार

संपादक मंडल

डॉ. शेषधर पाण्डेय
डॉ. विनोद कुमार
डॉ. संजय कुमार सिंह
डॉ. जय प्रकाश वर्मा
श्रीमती उपज्ञा साह

सहयोग

केंद्र के राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्य

डॉ. शेषधर पाण्डेय, अध्यक्ष
श्री. रामजी गिरी, सदस्य
श्री. अविनाश कुमार कश्यप, सदस्य
डॉ. विनोद कुमार, प्रभारी एवं सदस्य राजभाषा प्रभाग

प्रकाशक एवं संपर्क सूत्र
निदेशक/संपादक

भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र
मुशहरी फार्म, मुजफ्फरपुर 842002 बिहार
ई–मेल : nrclitchi@yahoo.co.in
वेबसाइट : www.nrclitchi.org

डॉ. शेषधर पाण्डेय
निदेशक

भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र
मुजफ्फरपुर 842002 बिहार

ISO 9001: 2015

निदेशक की कलम से

प्रिय पाठकगण,

हमारे संस्थान की वार्षिक हिंदी पत्रिका "लीचिमा" का छठवाँ अंक आप सभी के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे हर्ष की अनुभूति हो रही है। भाषा या बोली किसी भी राष्ट्र की संस्कृति, सभ्यता एवं संस्कारों के सृजन एवं सामंजस्य की महत्वपूर्ण कड़ी होती है। इसी श्रृंखला में, "लीचिमा" हमारी संस्थान का यह वह मंच है जो अपने स्वरूप, सामग्री और प्रस्तुति से कृषि से संबंधित अनुसंधान एवं तकनीकियों को किसानों तक पहुँचाने का शुभ अवसर प्रदान करता है। पत्रिका के इस अंक के माध्यम से मैं आप सभी को अवगत कराना चाहता हूं कि हमारा प्रतिष्ठित संस्थान अपने अथक प्रयासों के फलस्वरूप भारत में लीची अनुसंधान समन्वयन एवं प्रबंधन के लिए प्रयत्नरत है।

इसी संदर्भ में राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र अपना उत्तरदायित्व समझता है कि कृषि में विकसित नयें आयाम आप तक अपनी भाषा में पहुंच सके। इसी उद्देश्य के साथ "लीचिमा" का प्रकाशन निरंतर जारी है इस अंक में लीची एवं अन्य फसलों से संबंधित विभिन्न पहलुओं जैसे जल प्रबंधन, पादप स्वास्थ्य और खाद्य एवं पोषण, कृषि कानून, आदि को सम्मिलित किया गया है जो कि किसानों को फसल उत्पादन के लिए एक नया आयाम प्रदान करेंगे एवं उनकी आय वृद्धि में कारगर सिद्ध होंगे।

संस्थान में कर्मठ एवं सक्रिय कर्मचारियों के संबंधित प्रयासों व सहयोग से ही संस्थान का आज का आकार एवं रूप है तथा इनके प्रयासों से संस्थान आज लीची में उच्च स्तरीय शोध एवं प्रशिक्षण का केंद्र बन सका है। मैं विशेष रूप से संपादक मंडल एवं लेखकों का आभार प्रकट करता हूं जिनके प्रयत्नों और अथक प्रयासों से "लीचिमा" आज अपनी वर्तमान स्थिति पर पहुंची है। "लीचिमा" के निरंतर प्रकाशन के लिए विशेष रूप से बधाई के पात्र हैं। मुझे विश्वास है कि भविष्य में भी संस्थान में हिंदी भाषा के क्षेत्र में भी प्रयास जारी रहेंगे। मैं इस पत्रिका के सृजन में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सभी सहयोगियों का आभार व्यक्त करता हूं और पत्रिका के उज्जवल भविष्य की कामना करता हूं।

मुजफ्फरपुर
मार्च, 2021

(शेषधर पाण्डेय)

डॉ. अभय कुमार
वरिष्ठ वैज्ञानिक

भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र
मुजफ्फरपुर 842002 बिहार

ISO 9001: 2015

सम्पादकीय

राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंन्द्र की राजभाषा पत्रिका लीचिमा का छठवाँ अंक आपके समक्ष है। पिछले अंक की भांति इस अंक में भी भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के तथा भारत सरकार के अन्य कार्यालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों की रचनाओं को प्रकाशित किया है। भाषा समाज एवं संस्कृति का अभिन्न अंग है और मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में एक - दूसरे के बीच विचारों के आदान - प्रदान तथा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। समाज के निर्माण और उसकी विकास की यात्रा में मानव ने अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक उपाय किए हैं और उन्हें अभिव्यकृति प्रदान करने के लिए भाषा का सहारा लिया है। अनेकता में एकता भारत की विशेषता है। यहाँ अनेक भाषाएँ, जाति, धर्म, संस्कृति और परम्पराएँ हैं। परन्तु गहराई से देखें तो भारतीय संस्कृति अलग से समस्त राष्ट्र में दिखाई देती है और यही हमारी पहचान है। संविधान के अनुसार हिन्दी भारत संघ की राजभाषा है। जिस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क भाषा के रूप में अंग्रेजी को मान्यता प्राप्त है। उसी प्रकार सम्पूर्ण भारत में सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। हिन्दी केवल एक भाषा ही नहीं है अपितु वह समृद्ध, सांस्कृतिक, जीवन्त और वैविध्यपूर्ण समाज का दर्पण है। राजभाषा नीति के कार्यान्वयन के लिए हम सबका कर्तवय है कि प्रेरणा और प्रोत्साहन द्वारा इसके विकास में योगदान दें।

मैं संपादक मंडल की तरफ से सभी लेखकों/रचनाकारों का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने इस पत्रिका के प्रकाशन हेतु अपनी रचनाएँ/ लेखों का योगदान किया। मैं अपने केन्द्र के निदेशक डा. शेषधर पाण्डेय एवं सभी सहयोगियों का अभारी हूँ जिनके गम्भीर एव सकारात्मक प्रयास के बदौलत आज पत्रिका आपके सामने प्रस्तुत है। हम आशा करते हैं कि पत्रिका पाठकों के लिए उपयोगी, ज्ञानवर्धक एवं मनोरंजक होगी।

मुजफ्फरपुर
मार्च, 2021

अभय कुमार

(अभय कुमार)

विषय-वस्तु

1. राजभाषा अधिनियम एवं संकल्प 1
शेषधर पाण्डेय

2. बागवानी में प्रसंस्करण तथा उत्पाद विविधीकरण द्वारा उद्यमिता विकास एवं आत्म निर्भरता 4
विशाल नाथ, अलेमवती पोंगेनर एवं स्वपनिल पाण्डेय

3. लीची का विपणनः परिदृश्य एवं सुधार जरूरतें 7
विशाल नाथ एवं अलेमवती पोंगेनर

4. गर्डलिंग : लीची में नियमित फल लाने की तकनीक 11
अमरेन्द्र कुमार, रामाशीष कुमार एवं अजय कुमार रजक

5. पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पैर पसारती लीची 13
विशाल नाथ एवं शेषधर पाण्डेय

6. लौंगन के साथ हल्दी की खेती 15
शेषधर पाण्डेय, इवनिंग स्टोन मार्बोह एवं जयप्रकाश वर्मा

7. आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलें एवं खाद्य पदार्थः वरदान या अभिशाप? 18
विनोद कुमार, अभय कुमार एवं कविता

8. अदरक की खेती 23
प्रणव पाण्डेय एवं रणजीत कुमार

9. टमाटर में समेकित कीट प्रबन्धन 28
रणजीत कुमार, पुण्यव्रत सुविमलेन्दु पाण्डेय एवं प्रणव पाण्डेय

10. उचित जल प्रबन्धन : सुनियोजित कृषि का आधार 31
जितेन्द्र चन्द्र चन्दोला, विजय कुमार एवं अर्चना कुशवाहा

11. मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन में दलहनी फसलों की भूमिका 35
प्रभात कुमार

12. पादप स्वास्थ्य और खाद्य एवं पोषण सुरक्षा 37
रामाशीष कुमार एवं सुरभी सुमन

13. स्वच्छताः विज्ञान और प्रौद्योगिकी का योगदान 39
उपज्ञा साह एवं सोमेश कुमार

14. लीची के पौधों में पौध वास्तुः कितना आवश्यक एवं लाभकारी 43
विशाल नाथ

15. कृषि और कानून 46
शालिनी शुक्ला

16. स्वाद और सेहत का संगमः शहद 47
मथिलेश तिवारी, प्रियंका सिंह, राजीव रंजन राय एवं ए.के. सिंह

17. भारतीय पारम्परिक ज्ञान एवं इसमे पीढ़ी दर पीढ़ी शोधकार्यों की भूमिका 48
ऋचा रानी

18. भारत का पड़ोसी देशों से संबंध 51
सावन कुमार

19. लॉकडाउन – वरदान या अभिशाप 55
उपज्ञा साह एवं मुनीष कुमार

20. संग्रहालय की भूमिका एवं सतत् विकासः कोविड–19 के दौर में एवं उसके पश्चात 58
कुमार सत्यम

21. अद्भुत है अयोध्या का राम–राम वृक्ष 61
राज किशोर

22. बाग के पौधों की कहानी 64
लोकेश कुमार

23. हृदय के रोचक तथ्य 65
शकुन्तला साह एवं उपज्ञा साह

24. लीची दोहावली – लीची की वैज्ञानिक खेती 66
सुशील कुमार शुक्ल एवं विशाल नाथ

राजभाषा अधिनियम एवं संकल्प

शेषधर पाण्डेय
भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुजफ्फरपुर

राष्ट्रभाषा का अर्थ है राष्ट्र की भाषा (Language of Nation) अर्थात ऐसी भाषा जिसका प्रयोग देश की हर भाषा के लोग आसानी से कर सके और लिख सके। आजादी के पहले अंग्रेजों ने अंग्रेजी के माध्यम से सारा काम चलाया परंतु अपने देश मे सुचारू रूप से काम के लिए एक भाषा आवश्यक है जिसका सम्मान हिन्दी को मिला। हिंदी आज संसार के बहुत सारे विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाती है और इसका साहित्य भी विशाल है। यूनेस्को के विशेशज्ञों के अनुसार उस भाषा को राजभाषा कहते हैं जो सरकारी काम काज के लिए स्वीकार की गयी हो जब से प्रशासन की पंरपरा शुरू हुई है तभी से राजभाषा का प्रयोग भी किया जा रहा है। प्राचीन काल में संस्कृत, प्राकृत, पालि एवं अभ्रशं आदि भाषाओं का प्रयोग किया जाता था। राजपूत काल में तत्कालीन हिन्दी भाषा को प्रयोग किया जाता था। किंतु भारत में मुगलों का अधिपत्य हो जाने के बाद धीरे–धीरे हिन्दी का स्थान फारसी और अरबी भाषाओं ने ले लिया। इस बीच भी हिंदी स्थापित रही। आज भी हिंदी फारसी द्विभाषिय पत्र/फरमान बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं। यह इस बात का द्योतक है कि हिंदी हमेशा भाषा के रूप में काम काज के लिए सक्षम रही है।

अंग्रेजों ने अपने शासन काल में तत्कालीन प्रचलित भाषा फारसी को ही प्राश्रय दिया परिणाम स्वरूप भारत के आजाद हाने के कुछ समय बाद तक भी फारसी भारत के अधिकांश भागों में कचहरियो की भाषा बनी रही। 1855 में लार्ड मैकाल ने अंग्रेजी को भारत की शिक्षा और प्रसाशन की भाषा के रूप में स्थापित कर दिया। धीरे–धीरे यह पूर्णतया न केवल भारतीय प्रशासन की भाषा बन गई बल्कि शिक्षा, व्यापार व उद्योगों की भाषा के रूप में भी स्थापित हो गयी। अंग्रेजी ने हिंदी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी को एवं अन्य प्रदेशों में क्षेत्रीय भाषाओं को प्राथामिक एवं माध्यमिक स्कूलों तक शिक्षा का माध्यम बनाया। स्वतंत्रता संग्राम के साथ–साथ राजनेताओं ने हिंदी को राष्ट्रभाषा एवं संपर्क भाषा के रूप में प्रचार का प्रयास करते रहे। इसी राष्ट्रीय जन जागरण के के कारण हिंदी का उत्तरोत्तर प्रसार हुआ। भाषा विचारो कें आदान प्रदान का एक माध्यम है प्रत्येक राष्ट्र की अपनी अलग–अलग भाषाएँ होती है लेकिन उनका राजकाज जिस भाषा में होता है और जो जनसंपर्क की भाषा होती है उसे ही राष्ट्रभाषा का दर्जा मिलता है। भारत एक बहुभाषी राष्ट्र है जिसमें अलग–अलग राज्यों की अलग–अलग भाषाएं है जिसकी अपनी एक राष्ट्रभाषा है हिंदी। हिन्दी को यह गौरव 14 सितम्बर, 1949 को प्राप्त हुआ और 26 जनवरी, 1950 को संविधान बनने के बाद हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्राप्त हुआ। आजादी के बाद हिंदी को जो गौरव प्राप्त होना चाहिए था वह उसे नहीं प्राप्त हुआ, अब प्रश्न है कि हिन्दी को यह सम्मान कैसे प्राप्त हो जिससे हम अपने लक्ष्य तक पहुँच सकें।

प्रथम राष्ट्रपति डॉ राजेंद्र प्रसाद जी ने 14 दिसंबर 1949 को हिंदी राजभाषा की सभा को संबोधित करते हुए कहा कि मेरे विचार में हमने अपने संविधान में एक अध्याय स्वीकार किया है जिसका देश के निर्माण पर बहुत प्रभाव पड़ेगा। हमारे इतिहास में अब तक कभी भी एक भाषा को शासन और प्रशासन की भाषा के रूप में मान्यता नहीं मिली थी। हमारा धार्मिक साहित्य और प्रकाशन संस्कृत में सन्निहित था। निस्संदेह उसका समस्त देश में अध्ययन किया जाता था, किंतु वह भाषा भी कभी समूचे देश के प्रशासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होती थी। आज पहली ही बार ऐसा संविधान बना है जब कि हमने अपने संविधान में एक भाषा लिखी है जो संघ के प्रशासन की भाषा होगी और उस भाषा का विकास समय की परिस्थितियों के अनुसार ही करना होगा। मैं हिंदी का या किसी अन्य भाषा का विद्वान होने का दावा नहीं करता। मेरा यह भी दावा नहीं है कि किसी भाषा में मेरा कुछ अंश दान है, किंतु सामान्य व्यक्ति में हमारा उस भाषा का क्या रूप होगा जिसे हमने आज संघ के प्रशासन की भाषा स्वीकार की है। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि हिंदी देश की अन्य भाषाओं से अच्छी होगी तो उससे उन्नति ही होगी अच्छी बातें ग्रहण करें–अवनति नहीं होगी। हमने अब देश का राजनैतिक एकीकरण कर लिया है। मुझे आशा है कि सब सदस्य संतोष की भावना लेकर घर जाएंगे और उस कार्य में सहायता देगे जो संविधान के कारण संघ को भाषा के विषय में अब करना पड़ेगा।

अनुछेद 343 (3) के प्रावाधान को ध्यान में रखते हुए 10 मई, 1963 को राजभाशा अधिनियम बनाया गया, इसके अनुसार हिंदी संघ की राजभाषा व अंग्रेजी सह राजभाषा के रूप में प्रयोग में लायी जायेगी। इसमें 1976 में संशोधन किया गया इसके कुछ उपबंध इस प्रकार है।

1. अधिनियम की धारा संघ के उन सभी सरकारी

प्रयोजनों के लिए (क) के अनुसार 3, जिनके लिए 26 जनवरी, 1965 से तत्काल पूर्व अंग्रेजी का प्रयोग किया जा रहा था (ख) संसद में कार्य निष्पादन के लिए जनवरी 26, 1965 के बाद हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखा जा सकेगा।

2. केंद्र सरकार और हिन्दी को राजभाषा के रूप में न अपनाने वाले किसी राज्य के बीच पत्राचार अंग्रेजी में होगा, वशर्ते उसे राज्य ने इसके लिए हिन्दी का प्रयोग स्वीकार न किया हो। इसी प्रकार, हिन्दी भाषी राज्यों की सरकारें ऐसे राज्यों की सरकारों के साथ अंग्रेजी में पत्राचार करेगी और यदि वे ऐसे राज्यों को कोई पत्र हिन्दी में भेजती है तो साथ में ही उसका अंग्रेजी अनुवाद भी भेजेंगी। पारस्पिरिक समझौते से कोई भी दो राज्य आपसी पत्राचार में हिन्दी का प्रयोग करें तो इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 के तहत, देवनागरी लिपि में लिखी गई हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में अपनाया गया।

3. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों, आदि के बीच पत्र व्यवहार के लिए हिन्दी अथवा अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता है। पत्रादि का दूसरी भाषा में अनुवाद उपलब्ध कराया जाता रहेगा।

4. राज़्भाषा अधिनियम की धारा (3) 3 के अनुसार निम्नलिखित कागजपत्रों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग अनिवार्य है 1–2 संकल्प सामान्य आदेश 3–नियम 4–अधिसूचाएँ, 5–प्रशासनिक तथा अन्य रिपोर्ट 6–प्रेस विज्ञप्तियाँ 7–संसद के किसी सदन या सदनों के समक्ष रखी जाने वाली प्रशासनिक तथा अन्य रिपोर्टें एवं 8–सरकारी कागजपत्र 9–संविदाएँ 10–करार 11–अनुज्ञप्तियाँ, 12–अनुज्ञापत्र 13–टेंडर नोटिस और 14–टेंडर फार्म ।

5. धारा (4)–3 के अनुसार अधिनियम के अधीन नियम बनाते समय यह सुनश्चित कर लेना होगा कि यदि केन्द्रीय सरकार का कोई कर्मचारी हिन्दी या अंग्रेजी में से किसी एक ही भाषा में प्रवीण हो, तब वह अपना सरकारी कामकाज प्रभावी ढंग से कर सके और केवल इस आधार पर कि वह दोनो भाषाओं में प्रवीण नहीं है, उसका कोई अहित न हो।

6. राजभाषा अधिनियम (संशोधन) (5)3 द्वारा अधिनियम की धारा 1967 के रूप में यह उपबंध किया गया है कि उपर्युक्त विभिन्न कार्यों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने संबंधी व्यवस्था तब तक जारी रहेगी, जब तक हिन्दी को राजभाषा के रूप में अपनाने वाले सभी राज्यों के विधान मंडल अंग्रेजी का प्रयोग खत्म करने के लिए आवश्यक संकल्प पारित न करें और इन संकल्पों पर विचार करने के बाद संसद का प्रत्येक सदन भी इसी आशय का संकल्प पारिन न कर दें।

7. अधिनियम की धारा के अनुसार किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए अथवा पारित किसी निर्णय, डिग्री अथवा आदेश के लिए, अंग्रेजी भाषा के अलावा, हिन्दी अथवा राज्य की राज़्भाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकता है। तथापि यदि कोई निर्णय डिग्री या आदेश अंग्रेजी से किसी भिन्न भाषा में दिया या पारित किया जाता है तो उसके साथ संबंधित उच्च न्यायालय के प्राधिकार से अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी दिया जाएगा। अब तक उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और बिहार के राज्यपालों ने अपने उच्च न्यायालयों में उपर्युक्त उद्देश्यों के लिए राष्ट्रपति से हिन्दी के प्रयोग की अनुमति ली है।

16 दिसम्बर, 1967 को संसद के दोनो सदनों द्वारा राजभाषा संकल्प परित किया गया, और संकल्प 18 अगस्त, 1968 को प्रकाशित हुआ। वे इस प्रकार है।

संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राज़्भाषा हिंदी रहेगी और उसके अनुच्छेद 351 के अनुसार हिंदी भाषा का प्रसार, वृद्धि और उसका विकास करना, ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, संघ का कर्तव्य है:

1. यह सभा संकल्प करती है कि हिंदी के प्रसार एवं विकास की गति बढ़ाने हेतु तथा संघ के विभिन्न राजकीय प्रयोजनों के लिए उत्तरोत्तर इसके प्रयोग हेतु भारत सरकार द्वारा एक अधिक गहन एवं व्यापक कार्यक्रम तैयार किया जाएगा और उसे कार्यान्वित किया जाएगा और किए जाने वाले उपायों एवं की जाने वाली प्रगति की विस्तृत वार्षिक मूल्यांकन

रिपोर्ट संसद की दोनों सभाओं के पटल पर रखी जाएगी और सब राज्य सरकारों को भेजी जाएगी।

2. जबकि संविधान की आठवी अनुसूची में हिंदी के अतिरिक्त भारत की 21 मुख्य भाषाओं का उल्लेख किया गया है, और देश की शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि इन भाषाओं के पूर्ण विकास हेतु सामूहिक उपाए किए जाने चाहिए ।

यह सभा संकल्प करती है कि हिंदी के साथ–साथ इन सब भाषाओं के समन्वित विकास हेतु भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों के सहयोग से एक कार्यक्रम तैयार किया जाएगा और उसे कार्यान्वित किया जाएगा ताकि वे शीघ्र समृद्ध हो और आधुनिक ज्ञान के संचार का प्रभावी माध्यम बनें।

3. जबकि एकता की भावना के संवर्धन तथा देश के विभिन्न भागों में जनता में संचार की सुविधा हेतु यह आवश्यक है कि भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों के परामर्श से तैयार किए गए त्रि–भाषा सूत्र को सभी राज्यों में पूर्णत कार्यान्वित करने के लिए प्रभावी किया जाना चाहिए।

4. यह सभा संकल्प करती है कि हिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी तथा अंग्रेजी के अतिरिक्त एक आधुनिक भारतीय भाषा के, दक्षिण भारत की भाषाओं में से किसी एक को तरजीह देते हुए, और हिंदी भाषी क्षेत्रों में प्रादेशिक भाषाओं एवं अंग्रेजी के साथ–साथ हिंदी के अध्ययन के लिए उस सूत्र के अनुसार प्रबंध किया जाना चाहिए ।

5. और जबकि यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि संघ की लोक सेवाओं के विषय में देश के विभिन्न भागों के लोगों के न्यायोचित दावों और हितों का पूर्ण पिरत्राण किया जाए ।

6. यह सभा संकल्प करती है कि –

(क) कि उन विशेष सेवाओं अथवा पदों को छोड़कर जिनके लिए ऐसी किसी सेवा अथवा पद के कर्तव्यों के संतोषजनक निष्पादन हेतु केवल अंग्रेजी अथवा केवल हिंदी अथवा दोनों जैसी स्थिति हो, का उच्च स्तर का ज्ञान आवश्यक समझा जाए, संघ सेवाओं अथवा पदों के लिए भर्ती करने हेतु उम्मीदवारों के चयन के समय हिंदी अथवा अंग्रेजी में से किसी एक का ज्ञान अनिवार्य होगा और

(ख) कि परीक्षाओं की भावी योजना, प्रक्रिया संबंधी पहलुओं एवं समय के विषय में संघ लोक सेवा आयोग के विचार जानने के पश्चात अखिल भारतीय एवं उच्चतर केन्द्रीय सेवाओं संबंधी परीक्षाओं के लिए संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित सभी भाषाओं तथा अंग्रेजी को वैकल्पिक माध्यम के रूप में रखने की अनुमति होगी।

7. इसी वर्ष सिंधी भाषा संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल की गयी। राजभाशा अधिनियम 1963 को 8 जनवरी, 1968 को संशोधित किया गया। राजभाषा संकल्प के प्रावधानों के अनुसार 1968–69 से राजभाषा हिन्दी में कार्य करने के लिए विभिन्न मदों के लक्ष्य निर्धारित किए गये तथा इसके लिए वार्षिक कार्यक्रम तैयार किया गया।

8. 1 मार्च, 1971 को केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो का गठन हुआ एवं 1973 में केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो के दिल्ली स्थित मुख्यालय में एक प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना की गयी। 1974 में तीसरी श्रेणी के नीचे के कर्मचारियों एवं औद्योगिक प्रतिश्ठानों के कर्मचारियों को छोड़कर केन्द्र सरकार एवं केन्द्र सरकार के स्वामित्व वाली निगमों एवं उपक्रमों, बैकों के कर्मचारियों व अधिकारियों के लिए हिंदी भाषा टंकण एवं अशुलिपि का प्रशिक्षण अनिवार्य कर दिया गया। जून 1975 में राजभाषा से संबंधित संवैधानिक एवं विधिक उपबधों के कार्यान्वयन के लिए राजभाषा विभाग का गठन किया गया और 1976 में राजभाषा नियम बनाये गये इस वर्ष ही संसदीय राजभाषा समिति का गठन किया गया तब से अब तक समिति ने अपनी रिपोर्ट के 8 भाग प्रस्तुत किए हैं, जिससे प्रथम सात पर राष्ट्रपति के आदेश जारी हो गये हैं।

हिंदी को राजभाषा का सम्मान उसका अधिकार है यहां विस्तार से जानने की आवश्यकता नहीं है केवल राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा बताये गये लक्षणों पर दृष्टि डाल लेना ही पर्याप्त होगा ।

- उसे सरकारी अधिकारी आसानी से सीख सकें।
- वह समस्त भारत में धार्मिक, आर्थिक, और राजनितिक संपर्क के माध्यम के रूप में प्रयोग के लिए सक्षम हो।
- वह अधिकांश भारतवासियों द्वारा बोली जाती हो,
- सारे देश को उसे सीखने में आसनी हो,
- ऐसी भाषा को चुनते समय अरजी या क्षणिक हितों पर ध्यान न दिया जाए ।

हिंदी भाषा इन लक्षणों पर बिलकुल खरी उतरती है। भारत का नागरिक होने के नाते हमारा कर्तव्य है कि हम भारतीय भाषाओं के विकास पर बल दें और हिन्दी का विकास करके सभी भाषाओं को जोड़ने का प्रयास करें तभी हिंदी सही रूप में राष्ट्रभाषा बन

बागवानी में प्रसंस्करण तथा उत्पाद विविधीकरण द्वारा उद्यमिता विकास एवं आत्म निर्भरता

विशाल नाथ[1], अलेमवती पोंगेनर[1] एवं स्वपनिल पाण्डेय[2]
[1] भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर
[2] पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना, पंजाब

भारत एक कृषि प्रधान देश है। कृषि देश की अर्थव्यवस्था में 18 प्रतिशत भागीदारी सुनिश्चित करता है और 50 प्रतिशत लोगों को रोजगार देता है। भारत वर्ष बागवानी फसलों के उत्पादन मं विश्व में दूसरे स्थान पर है। यहाँ पर प्रतिवर्ष (2017–18) लगभग 25.5 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र से 313 मिलियन टन बागवानी फसलों का उत्पादन होता है। हम बागवानी फसलों के उत्पादन में खाद्यान फसलों की तुलना (285 मिलियन टन) में आगे निकल (313 मिलियन टन) चुके हैं। देश में करीब 6.5 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल से 98.5 मिलियन टन फल प्रतिवर्ष पैदा होता है। इसी प्रकार सब्जियों के मामले में लगभग 10.3 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल से 186.4 मिलियन टन सब्जी का प्रतिवर्ष उत्पादन हो रहा है। मसालों, औषधीय पौधों, सुगन्ध वाले पौधों, रोपण फसलों, फूलों, मशरूम, शहद आदि के उत्पादन में भी देश ने मुकाम हासिल किया है। देश के कुल बागवानी उत्पादन में लगभग 31 प्रतिशत फलों, 60 प्रतिशत सब्जियों, 2.5 प्रतिशत मसालों और लगभग 1 प्रतिशत फूलों एवं औषधीय पौधों की हिस्सेदारी है।

अगर हम बिहार प्रदेश के सन्दर्भ में देखें तो यहाँ पर देश के कुल बागवानी उत्पादन का लगभग 6.8 प्रतिशत पैदावार होता है। बिहार राज्य का देश के स्तर पर फल फसलोत्पादन (98.5 मिलियन टन) में लगभग 5.3 प्रतिशत हिस्सेदारी और सब्जियों के उत्पादन (186. 4 मिलियन टन) में लगभग 8.6 प्रतिशत की भागीदारी रहती है। बिहार प्रदेश के प्रमुख फलों, आम, लीची, केला, अगरूद, पपीता, अनन्नास, नीबू वर्गीय फलों (गागर नीबू), आंवला, बेल, कटहल आदि का अपना एक स्थान रहता है। यहाँ पर पैदा होने वाला जरदालू और माल्दाह आम, शाही लीची, पूसा किस्मों के पपीते, गागर नीबू, कागजी बेल आदि का देश ही नहीं बल्कि विश्व स्तर पर दबदबा रहता है। बिहार राज्य अपने धरोहर फलों में शाही लीची तथा जरदालू आम का भौगोलिक उपदर्शन (GI Tag) भी प्राप्त कर चुका है जिसकी विशेष गुणवत्ता विश्व स्तर पर विख्यात है। सब्जियों के क्षेत्र में प्रदेश से उत्पादित प्याज, टमाटर, मिर्च, ओल, परवल, अगेती गोभी, भिण्डी आदि का अपना अलग ही महत्व है। चाहे आलू का उत्पादन हो या परवल की गुणवत्ता, चाहे हाजीपुर की अगेती गोभी हो या किस्म का ओल, शायद ही ऐसा उत्पाद देश के अन्य प्रदेशों में होता है। बिहार की हल्दी एवं मिर्च की गुणवत्ता काफी सराहनीय है। राज्य में शहद का उत्पादन भी काफी बड़े पैमाने पर होता है जिसमें लीची के शहद को एक विशेष स्थान है।

कृषि आधारित प्रदेश

बिहार मूलतः कृषि आधारित प्रदेश है जहाँ पर खाद्यान और बागवानी फसलों पर ही अधिकतर लोगों की जीविका निर्भर रहती है। राज्य सरकार इस दिशा में काफी संवेदनशील है तथा कृषि रोटमैप के माध्यम से हर क्षेत्र के विकास का खाका तैयार किया है। कृषि रोडमैप पर साल–दर–साल अमल के परिणाम स्वरूप प्रदेश की काफी प्रगति हुई है और करोड़ों रूपये का राजस्व भी प्रतिवर्ष मिलता है। राज्य को कृषि में बेहतर प्रदर्शन के लिए राष्ट्रीय स्तर पर 'कृषि कर्मण' पुरस्कार से कई बार नवाजा जा चुका है।

इन सब उपलब्धियों और संभावनाओं के बीच हमें यह अवश्य समझना चाहिये कि जब हमारे पास कोई बड़े उद्योग नहीं है, खनिज सम्पदा का ज्यादा भण्डार नहीं है, पर्यटन उद्योग संभावनाएं भी सीमित हैं, तब हमें जोश, उनके ज्ञान और कौशल के उपयोग द्वारा कृषि क्षेत्र में नई–नई संभावनाएं को तलाशने और उसे प्रोत्साहित करने की दिशा में कार्य करना होगा। हम जानते हैं कि बागवानी फसलों में जल्दी खराब होने की प्रवृत्ति होती है, यदि उन्हें एक निश्चिम समय सीमा के अन्दर उचित प्रबन्ध द्वारा उपयोग में नहीं लाया गया अथवा उनका विपणन या प्रसंस्करण नहीं किया गया तो किसानों व उद्यमियों को 25–40 प्रतिशत तक नुकसान हो सकता है। साथ ही साथ यदि उत्पादन अधिक हुआ तो उचित बाजार न मिलने के कारण दाम कम मिलता है। बागवानी क्षेत्र में भंडारण एवं प्रसंस्करण की सुविधा, परिवहन के साधन, बाजार की आधारभूत संरचना एवं सुविधा इत्यादि अहम और आश्यक स्तम्भ होते है। इसमें किसी भी प्रकार की कमी, अव्यवस्था, सुस्तापन और तकनीक का अभाव पूरी अर्थव्यावस्था को प्रभावित कर सकता है अतः हमें इस दिशा में ध्यान देने और उसमे

ससमय उचित प्रबन्ध के बारे में चिन्ता और चिन्तन करने की आवश्यकता है। हमें अपने किसानों और नौजवानों को आत्म निर्भर बनाने के लिए बागवानी के क्षेत्र में विशेष कर प्रसंस्करण के दिशा में अधिक ध्यान देने की जरूरत हैं और जब हमारे प्रधानमंत्री ने 'आत्मनिर्भर भारत' का आह्वान किया है कि जब तक हमारे देश और प्रदेश का किसान आत्मनिर्भर नहीं होगा तब तक शायद हम इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पायेंगें। इस दिशा में फल सब्जी प्रसंस्करण एक मजबूत हथियार सिद्ध हो सकता है। इस समय देश में फल एवं सब्जियों का प्रसंस्करण वर्तमान में बहुत कम और कुछ मामलों में तो लगभग नगण्य है। अगर कुछ विशेष फसलों को छोड़ दें, तो प्रसंस्करण का स्तर 5 प्रतिशत से भी कम है। अतः इस दिशा में हमें जागरूक होने और इसे बढ़ावा देने की जरूरत है। विडम्बना देखिये कि हम प्रतिदिन किसी न किसी रूप में कोई न कोई प्रसंस्कृत उत्पाद उपयोग करते हैं, चाहे वह अचार, मुरब्बा, जैम, जैली, सॉस, शर्बत हो या यदि फिर बड़े–बड़े माल से खरीदा गया सुन्दर–सुन्दर पैक में ताजे फल व सब्जियां हों अथवा पैकेट में बन्द मसाले। हम बड़े ही गर्व से कई गुना अधिक मूल्य देकर खरीदते हैं और उपयोग भी करते हैं। क्या हमने कभी इस दिशा में सोचा कि हम या हमारे राज्य के नवयुवक इस क्षेत्र में अपना उद्यम सृजित कर सकतें हैं और अपने आस–पास में बहुतायत से पैदा होने वाले फल एवं सब्जियों को इस रूप में परिवर्तित करके स्वयं एवं अन्य युवाओं को रोजगार दे सकतें है। शायद नहीं। जबकि , आज की शहरी आबादी के पास समय और धैर्य की सर्वथा कमी देखी जा रही है। वे अधिक व्यस्त रहते हैं और उन्हें सुलभ खाद्य जैसे तैयार खाद्य पदार्थों अथवा ऐसे पदार्थों जिन्हें जल्दी और कम समय में पकाया जा सके, की आवश्यकता रहती है। उदाहरण के लिए अंकुरित अनाज, मैगी, हाफ कुक्ड सब्जियां आदि। आज कल हमारे अधिकतर लोगों को जरूरत है, आम का रस या गूदा की लेकिन हमारे किसान पैदा करते हैं आम। उनकी जरूरत है छिला और कटा हुआ कटहल लेकिन हम बेंचते हैं कटहल का फल। उन्हें चाहिए आंवले का मुरब्बा और हम बेंचते हैं आंवले फल। ऐसे अनेक उदाहरण आपके पास भी होंगे और आप यह भी देखते होंगे बहुत सारे ऐसे उत्पाद बाजार में मिल भी रहे हैं और मिल ही नहीं रहे हैं बल्कि ऊँचे दामों पर मिल रहें है तथा उनका नामी गिरामी ब्राण्ड भी है। यदि हम ऐसा सोचते और उत्पाद तैयार करते तो आज हमारा भी एक 'ब्राण्ड' होता तथा हमारे उत्पाद भी देश के विभिन्न सुपर मार्केट के रैक में लगे होते और हमारे प्रदेश और क्षेत्र का नाम रोशन होता और हमें स्वरोजगार मिलता। यदि कोई किसान या उद्यमी लोगों की आवश्यकताओं के अनुरूप एक इमानदार प्रयास करे तो अपने उत्पाद में मूल्य सम्वर्धन करके लाभ कमा सकता है।

इस विषय पर मैं एक उदाहरण द्वारा अनपी बात को स्पष्ट करना चाहूँगा। हमारे प्रदेश में लगभग 10,000 टन शहद उत्पादित होता है जिसमें लीची का शहद प्रमुख है। हमारे मेहनतकश मधुमक्खी पालक दिन–रात परिश्रम करके शहद इकट्ठा करते हैं और उन्हें स्थानीय स्तर पर 90–100 रूपये प्रति किलो के दर से बेच देते हैं। यही शहद जब प्रसंस्कृत करके किसी कम्पनी का लेवल लगाकर बाजार में आता है तो मूल्य होता है, 400–500 रूपये प्रति किलो और अगर छोटे पैक में है तो और भी अधिक। यदि कच्चे श्शहद को मशीन द्वारा प्रसंस्कृत करके, अच्छे से पैक करके, उसकी गुणवत्ता का स्तर मेनटेन करके बाजार में भेजा जाय तो यही श्शहद जिसकी प्रसंस्करण समेत कुल लागत 140–150 रूपये प्रति किलाग्राम की होती है, आसानी से 300–350 रूपये प्रति किलोग्राम के दर पर बेचा जा सकता है। हमने भा.कृ.अनु.प.– राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर की प्रसंस्करण कार्यशाला में इसके प्रशिक्षण, गुणवत्ता नियंत्रण, गुणवत्ता जाँच और उत्पादन का एक सफल प्रयोग किया है और पाया है कि इसमें 200–250 प्रतिशत तक लाभ मिल सकता है। अब जरूरत है, नवयुवकों को आगे आने की आवश्यक सुविधाओं के विकास की और उद्यमिता के नये मानदण्ड स्थापित करने की। इसी प्रकार फलों को प्रसंस्करण जो अभी बामुश्किल 3–4 प्रतिशत तक ही होता है उसे बढ़ाया जा सकता है जो कि बहुत ही आसान एवं कम लागत वाला उद्यम है। हमने ऐसे 14–15 उद्यमियों को प्रशिक्षित करके लाइसेंस भी दिया है परन्तु इसे और बढ़ाने की आवश्यता है। सूक्ष्म अथवा कुटीर उद्योग के स्तर पर उत्पाद विविधीकरण किसानों की समस्या का हल हो सकता है। लिज्जत पापड़ की सफलता शायद आप को याद होगी, हमें उस दिशा में आगे बढ़ना होगा। हमें प्राथमिक प्रसंस्करण के साथ–साथ उत्पाद विविधीकरण यानी अनेकानेक उत्पाद बनाने की दिशा में भी प्रयास करने होंगें। उदाहरण के लिए बिहार में पैदा होने वाली मशहूर लीची की जब तुड़ाई होती है तो बागीचे से कुल उत्पादन का लगभग 60–70 प्रतिशत फल ही बाजार में ताजे फलों के रूप में बिक्री के लिए भेजा जाता है। शेष फल या तो बाजार के मानक के

अनुरूप नहीं होते अथवा कटे–फटे लेकिन उनके गूदे अच्छे होते हैं जो प्रसंस्करण योग्य होते हैं। जब यह फल फैक्ट्री में जाता है तो इससे 50–60 प्रतिशत तक गूदा निकलता है जिससे अनेक उत्पाद जैसे स्क्वैश, आर टी एस, नेक्टर आदि बनते हैं। परन्तु हम गूदे को ही बड़ी–बड़ी ब्रांण्ड वाली कम्पनियों को बेच देते हैं और दाम मिलता है 70–80 रूपये प्रति किलो का। यही गूदा या पल्प जब टेट्रा पैक, स्क्वैश आदि के रूप में हम खरीदते हैं तो हम देते हैं 150–200 रूपये प्रति लीटर। हम आपको बताते चलें कि एक किलो गूदा या पल्प से 4 लीटर स्क्वैश या 10 लीटर आर टी एस (जो टेट्रा पै में होता है) बनता है और इसकी कुल लागत आती है 30–40 रूपये प्रति लीटर या उससे भी कम। परन्तु हम उसे खरीदते हैं। मै नौजवानों, पढ़े–लिखे और बेरोजगारों की पंक्ति में खड़े अपने उन बच्चों और भाइयों से यह पूछना चाहता हूँ कि क्या हम यह नहीं कर सकते। उत्तर होगा हाँ कर सकते हैं परन्तु प्रशिक्षण कहाँ मिलेगा, फाइनेन्स कहाँ मिलेगा, बाजार कहाँ मिलेगा, कौन खरीदेगा हमारे उत्पाद को बाजार में, इसे कौन करेगा, लाभ होगा या नुकसान आदि आदि। और फिर हम चुप–चाप बैठ जायेंगे और प्रयास करेंगे कि किसी निजी या सरकारी कम्पनी में कोई निश्चित दरमाह वाली नौकरी मिल जाय। यह सम्भव है और अब समय आ गया है कि हम आत्मनिर्भर बनें, ज्ञानी बनें और अपनी नेतृत्व क्षमता का विकास करें। जोखिमों से डरें नहीं। नौकरी लेने के बजाय नौकरी देने की ओर सोचें। अतः भाइयों उठें और आगे बढ़ें। 'Where there is will there is way' सरकार आपके साथ है और समय आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। इस कोविड काल में हमारे बहुत से प्रवासी भाई–बहन अपने प्रदेश में आये हैं, उनमें हुनर भी है और जज्बा भी। सकारात्मक सोच के साथ योजनाबद्ध तरीके से आगे बढ़ें, सफलता आपके कदम चूमेगी और आप एक कृषि उद्यमी बन कर उभरेंगे।

बागवानी एवं आत्मनिर्भरता

बागवानी के क्षेत्र में उद्यमिता की अनेकानेक सम्भावनाएं हैं। सब्जियों के बीज उत्पादन का क्षेत्र हो, पौधशाला बना कर लोगों को बिचड़ा उपलब्ध कराना हो, जैविक उपादान जैसे वर्मीकम्पोस्ट, वर्मीवाश, पौधा टानिक, पंचगब्या आदि बनाना हो, फलों एवं सब्जियों की तैयारी, पैकेजिंग, न्यूनतम प्रसंस्करण द्वारा मूल्य संवर्धन हो या फिर फलों एवं सब्जियों के वैल्यू चेन को विकसित करने का क्षेत्र हो, संभावनाएं अपार हैं, ज्ञान का भण्डार भी असीमित एवं सुलभ है तथा सरकार की नीतियां भी अनुकूल हैं।

अतः हमें इस अवसर का लाभ लेना चाहिए और विशेष कर बिहार जैसे कृषि सम्पदा सम्पन्न राज्य में बागवानी आधारित उद्यमिता और प्रसंस्करण के माध्यम से एक उज्ज्वल कल की परिकल्पना जरूर करनी चाहिए। फर्ज करिये कि अगर कोई उद्यमी उत्तर बिहार में एक प्रसंस्करण इकाई स्थापित करता है तो उसे वर्ष भर प्रसंस्करण की योजना के अनुसार तैयारी करनी चाहिए।

जैसा कि हमारे पूर्व राष्ट्रपति स्वर्गीय डॉ. अब्दुल कलाम साहब की सोच थी कि 'सपने जरूर देखिये और उसे पूरा करने के लिए पूरे मनोयोग से प्रयास करिये'। मेरे खयाल से हमें आगे बढ़ना चाहिये।

महीना	प्रसंस्करण की संभावनाएं	उपलब्ध बागवानी उत्पाद
जनवरी–मार्च	शहद प्रसंस्करण, मशरूम प्रसंस्करण, मटर की डिब्बा बन्दी, अचार	शीत कालीन सब्जियां एवं फल
अप्रैल–मई	बेल के उत्पाद, कच्चे आम से अचार, कटहल के अचार,कटहल के डिब्बा बन्द टुकड़े	परवल और अन्य लतादार सब्जियां
मई–जून	लीची के विभिन्न उत्पाद	लीची/आम
जून–अगस्त	आम और वर्षा कालीन अमरूद के अनेक उत्पाद	आम और अमरूद
सितम्बर–अक्टूबर	आंवले का मुरब्बा, कैण्डी, अचार आदि	मक्का की किस्में (Sweet/ baby corn) और सब्जियां
नवम्बर–दिसम्बर	टमाटर के अनेक उत्पाद और सब्जियों के अचार	गागर नीबू, सब्जियां

लीची का विपणनः परिदृश्य एवं सुधार जरूरतें

विशाल नाथ एवं अलेमवती पोंगेनर
भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

वर्तमान समय में पूरे देश में लगभग 1 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल पर लीची की बागवानी हो रही है जिससे प्रतिवर्ष लगभग 7.5 लाख टन (2019–20) फल पैदा होता है। वर्ष 1950 में जब भारत में मात्र 11000 हेक्टयेर क्षेत्रफल से 45000 टन लीची पैदा करते थे, तब शायद किसी ने इसके बाजार और विपणन का परिपकल्पना नहीं की होगी। उस समय जो भी उत्पाद घरेलू और स्थानीय उपयोग से बचता था उसे आस–पास के बाजारों में आसानी से बिक्री किया जाता था और उसके गुणवत्ता, भण्डारण क्षमता, श्रेणीकरण आदि पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। वास्तव में उस समय इस प्रकार के फल एवं सब्जियों का व्यापार एक वर्ग विशेष तक ही सीमित होता था और समाज के बहुत सारे वर्ग और समुदाय फल एवं सब्जी व्यापार को अपनी इज्जत और मान मर्यादा का स्तर भी मानते थे। आज जब हम 7.5 लाख टन लीची उत्पादित कर रहे हैं तब इसके विपणन और उससे जुड़ी हुई आधारभूत संरचनाओं की अत्यधिक जरूरत महसूस की जाने लगी है।

लीची के उत्पादन में बिहार एक अग्रणी राज्य है जहाँ देश के कुल उत्पादन का लगभग 40–45 प्रतिशत फल पैदा हो रहा है। बिहार में लीची उत्पादन परम्परिक तरीके से किया जाता रहा है और पिछले लगभग 10 वर्षों से क्षेत्रफल विस्तार की दर लगभग 1.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष स्थिर है और यही कारण है कि अन्य राज्य जो उत्तरोत्तर गति से लीची की बागवानी बढ़ा रहे हैं, बिहार के लिए खतरा बनते जा रहे हैं। चूँकि नये बागीचे आधुनिक विधि और वैज्ञानिकता के आधार पर स्थापित हो रहे हैं और उनमें वैज्ञानिक अनुशंसा के अनुरूप कृषि कार्य भी हो रहे हैं अतः उनकी उत्पादकता और गुणवत्ता दोनों बेहतर हो रही है। शायद यही कारण है कि पंजाब में लीची की उत्पादकता 15 टन/हेक्टेयर के आस–पास पिछले कई वर्षों से रह रही है जो बिहार के तुलना में लगभग दो गुणा है। बिहार के अधिकतर बाग बूढे हो चले हैं और उत्पादकता दिन प्रतिदिन घटती जा रही है परन्तु जो किसान नवीनतम अनुसंधान अनुशंसा के अनुरूप बागीचों का प्रबंध कर रहे हैं उनकी उत्पादकता 12–13 टन/हेक्टेयर तक हो रही है यद्यपि एसे बागवानों की संख्या बहुत कम है। विगत में उत्पन्न परिस्थिति के कारण और बिहार के बाहर बेहतर कल के तलाश में जो पलायन बिहार से अन्य राज्यों या शहरों को हुआ है, उससे भी लीची की बागवानी और विपणन बहुत हद तक प्रभावित हुआ है। यहां पर बहुत सारे एसे लीची के बाग आपको मिल जांयगे जो प्रबन्धकों या हिस्सेदारों द्वारा संचालित हो रहे हैं और वे ससमय तथा पारदर्शी निर्णय लने में सक्षम नहीं हो पाते हैं जिससे बाग प्रबन्ध और विपणन दोनों बुरी तरीके से प्रभावित होता है क्योंकि उन पौधों से अच्छी गुणवत्ता के फल नहीं मिल पाते, जिनका बेहतर और प्रतिस्पर्धात्मक बाजार बन सके।

विगत वर्षों में बिहार से लीची का जो भी व्यापार होता रहा है, मुजफ्फरपुर उसका केन्द्र बिन्दु था क्योंकि उत्तर बिहार में मुजफ्फरपुर एक स्थापित व्यवसायिक केन्द्र रहा है और सड़क तथा रेल मार्ग से देश के विभिन्न हिस्सों से जुड़ा हुआ है। अगर हम लीची के क्षेत्रफल में फैलाव और उत्पादकता के दृष्टिकोण से देखते हैं तो मुजफ्फरपुर और आस–पास के जिले जैसे समस्तीपुर, वैशाली, पूर्वी चम्पारण, सीतामढ़ी आदि या यूँ कहें कि पूरी तिरहुत प्रमण्डल लीची के लिए बेहतर मिट्टी एवं जलवायु मुहैया कराता है। गण्डक तथा अन्य नदियों द्वारा लायी हुई जलोढ़ मृदा तथा नदियों के निरन्तर बाही होने के कारण गर्मियों के दिनों में (जब लीची के फल विकसित एवं परिपक्व होते हैं) जलवायु की आर्द्रता, इस क्षेत्र को लीची के खेती और गुणवत्तायुक्त पैदावार के लिए बेहतर बनाती है और शायद इसी कारण से इस क्षेत्र को भौगोलिक उपदर्शन (GI Tag) भी मिल चुका है। हलाँकि यह बात और है कि विश्व के प्रमुख लीची उत्पादक क्षेत्र इससे भिन्न हैं और वहाँ पर लीची की गुणवत्ता (खुशबू को छोड़कर) बेहतर भी है, परन्तु बिहार का यह क्षेत्र लीची

उत्पादन का एक स्थापित केन्द्र बन चुका है।

शायद यही कारण भी है कि सन् 2001 में मुजफ्फरपुर जनपद के मुशहरी प्रखण्ड में भारतीय कृषि अनुसंधान परिशद् नई दिल्ली ने राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र की स्थापना की थी। केन्द्र ने अपने 20 वर्षों के प्रयास से लीची की अनेक किस्मों, उत्पादन तकनीकों, पौध सुरक्षा उपायों तथा फलों के भण्डारण एवं उत्पाद विविधीकरण की अनेक तकनीकों का तो विकास किया है परन्तु विपणन के क्षेत्र में कोई खास पहल नहीं हो पायी है क्योंकि फलों का विपणन किसान और व्यापारी के मध्य प्रत्यक्ष या परोक्ष सौदेबाजी के कारण कृषि अनुंसधान के दायरे से परे हो जाता है। अतः इसकी स्थिति अत्यन्त सोचनीय एवं दैनीय बनी हुई है। इस क्षेत्र में लीची के विपणन की मुख्य रूप से तीन–चार विधियां प्रचलित हैं जिनसे कभी किसान तो कभी व्यापारी संतुष्ट नहीं हो पाते। एक पारदर्शी सौदेबाजी और दोनों पक्षों के इमानदारी के अभाव में हमेशा दोनों पक्ष कभी न कभी और किसी न किसी रूप से प्रभावित होता है और एक असंतोष को जन्म देता है। जिस वर्ष क्रेता पक्ष फायदे में होता है वह दूसरे पक्ष (विक्रेता–किसान) को भागीदार नहीं बनाता और जिस वर्श क्रेता पक्ष (व्यापारी) कम फायदा या नुकसान में होता है तो वह किसान को पूरा पैसा नहीं देता। इस प्रकार लीची उत्पादक किसान एक स्थापित बाजार व्यवस्था न होने के कारण हमेशा समस्याग्रस्त रहता है और शायद इसी कारण दिन–प्रतिदिन उसकी लीची से अभिरूचि कम होती जाती है।

लीची विपणन का परिदृश्य

बिहार में उत्पादित होने वाली कुल लीची का लगभग 40 प्रतिशत हिस्सा दूरस्थ बाजार और लगभग इतना ही स्थानीय बाजारों में बिकता है जिसके लिए मौजूदा परिस्थिति में तीन विधियां सामन्य रूप से अपनायी जा रही है। जो तीनों विधियां प्रचलित है उनके भी अपने गुण एवं दोष हैं और वे कोई स्थाई समाधान देने में असमर्थ हैं। प्रचलित विधियों का विवरण इस प्रकार है।

1. **किसान–व्यापारी विधि** :– यद्यपि यह विधि सीधी और आसान है परन्तु व्यापारियों के पास किसानों से और किसानों के पास का व्यापारियों से सम्पर्क स्थापित करने और सौदा तय करने का कोई सामान्य और कानूनी प्लेटफार्म न होने के कारण, बहुत ही कम लोग इस विधि से जुड़ पाते हैं। इसके साथ ही साथ समझौता से मुकर जाने का खतरा ज्यादा रहता है।
2. **किसान–छोटा व्यापारी– बड़ा व्यापारी** :– बिहार के ज्यादातर लीची उत्पादक किसान इस पद्धति के मकड़जाल में फंसे रहते हैं। चूँकि बड़ा व्यापारी कुछ छोटे व्यापारियों, (विचौलियों) जिन्हें सम्मानपर्वूक द्वितीय अंशदार (Secondary Stakeholder) भी कह सकते हैं, के सम्पर्क में रहता है और यह छोटा व्यापारी किसानों के सम्पर्क में होता है। अतः सौदा दो स्तरों पर होता है। अब यदि बीच की कड़ी (छोटा व्यापारी या विचौलिया) इमानदार और पारदर्शी है जिसकी कि सम्भावना बहुत कम होती है तो सौदा ठीक–ठाक से होता है और तीनों पक्ष (किसान, छोट व्यापरी और बड़ा व्यापारी) संतुष्ट रहते है। कभी–कभी ऐसा भी होता है कि अनेक व्यापारी आपसी सहभागिता या पार्टनरशिप में व्यवसाय करते हैं ऐसी दशा में दोनों को जोखिम और लाभ का प्रति फल भुगतना पड़ता है और ऐसी दोनो दशाओं में अक्सर साझेदारी टूट जाती है या कोई दूसरा रूप ले लेती है जो कभी–कभी अत्यन्त घातक जो जाता है। इस पद्धति का सबसे शसक्त पहलू है कि किसान को बिना किसी जोखिम के फसल का मूल्य मिलने की सम्भावना बनी रहती है, अतः अधिकतर लोग इसका अनुसरण करते हैं। परन्तु जो लोग जोखिम उठाने की क्षमता और बाजार पर थोड़ा पकड़ रखते हैं, वे इससे अलग तीसरे पद्धति को अपनाते हैं।
3. **किसान द्वारा सीधे व्यापार** :– यह पद्धति भी कुछ ही गिने–चुने लीची उत्पादको द्वारा अपनाई जा रही है। या तो किसान बहुत छोटा हो जो स्वयं अपना उत्पाद स्थानीय बाजार में बेचे या बड़ा किसान हो जिसके पास अपना स्वयं का आधारभूत विपणन ढ़ाचा हो और बाजार की समझ और ग्राहक से सम्पर्क हो। इस पद्धति में जोखिम तो

रहता है परन्तु मुनाफा भी अच्छा होता है। अतः सक्षम तथा पढ़े– लिखे किसान यदि इस दिशा में आगे बढ़ें तो शायद परिदृश्य कुछ बदला जा सकता है।

सबसे ज्यादा प्रचलित लीची विपणन की विधि की बारीकियों पर विस्तार से चर्चा द्वारा शायद हमें कोई नया रास्ता दिखेगा जो लीची के विपणन को नई दिशा दे सकता है। आधुनकि परिवेश में इस विषय पर अनेक सुझाव भी आ सकते हैं। लीची उत्पादक यदि अपना बागीचा किसी छोटे व्यापारी को देता है तो सर्वप्रथम दोनों पक्ष (किसान और छोटा व्यापारी) की कुछ शर्ते हो सकती हैं जिसे समझना चाहिए और उस पर पालन करना दोनों पक्ष की वाध्यता रहनी चाहिए।

वर्तमान स्थिति

किसान बगीचों को एक वर्ष, दो वर्ष या तीन वर्ष के लिए बिक्री कर सकता है। यदि सौदा सामान्य दशा में दोनों के आपसी सहमति से किसी लिखित दस्तावेज द्वारा निर्धारित होता है तो यह व्यवस्था अच्छी चल सकती है। निम्नलिखित सारणी से एक वर्ष के लिए बिक्री, दो वर्ष और तीन वर्ष के लिए बिक्री हेतु दोनों पक्ष क्या कर सकते हैं, एक सुझाव दिया गया है।

इस पद्धति में सारा दारोमदार किसान और छोटे व्यापारी पर होता है। किसान जहाँ अपने बागीचों को स्वस्थ दशा में व्यापारी को बेचता है, वहीं छोटा व्यापारी बाग प्रबंध से लेकर फल सुरक्षा एवं आगे के बड़े व्यापारियों से सम्पर्क द्वारा फल उनके गन्तव्य स्थान या मण्डी तक भेजने का प्रबंध करता है। यदि व्यापारी स्थापित शाख वाला, पंजीकृत, पारदर्शी, एवं साधन सम्पन्न होता है तो उसे न तो किसान से कोई परेशानी होती है और न ही बड़े–बड़े व्यापारियों से। अतः स्थानीय स्तर पर लीची का विपणन करने वाले व्यापारियों का पंजीकरण होना अति आवश्यक होता है जो लीची विपणन का एक मजबूत स्तंभ होगा। वर्तमान समय में यह व्यवस्था नहीं है जिसके फलस्वरूप कोई भी व्यक्ति या नौजवान इसमें कूद पड़ता है और शाख या परदर्शिता की कमी के कारण कोई उत्तरदायित्व लेने में अक्षम होता है तथा पूरा व्यवसाय चौपट हो जाता है। अन्ततः किसान को पूरा पैसा नहीं मिलता है और अविश्वास की स्थिति पैदा हो जाती है।

आधुनिक प्रयास

इस दिशा में आजकल (सरकार द्वारा स्टार्ट अप, एफ पी ओ आदि के प्रोत्साहन के बाद) बहुत सारे तकनीकी सम्पन्न उद्यमी आधुनिक प्रयास कर रहे हैं। उनके पास ज्ञान भी है तथा आधारभूत संरचना (शीतवाहन, पैकहाऊस) सहित बाजार भी। परन्तु उनके पास लीची के बाग नहीं हैं। अतः वे पेड़ों पर फल लगने के बाद ही सक्रिय होते है और चूँकि लीची की परिपक्वता अवधि बहुत कम होती है, वे कोई ठोस कदम उठाने में असमर्थ दिखते हैं तथा उस समय जो भी मध्यस्तता करने वाले लोग या व्यापारी उनके सर्म्पक में आते हैं, उन्हीं पर विश्वास करके वे व्यापार करते हैं जो शायद एक दूरगामी

जिम्मेंदारियों एवं शर्तों का विवरण

पक्ष	एक वर्ष	दो वर्ष	तीन वर्ष
किसान	मंजर और फल सुरक्षा, उत्पाद संग्रहण केन्द्र, बिजली, पानी की व्यवस्था करना।	उत्पाद संग्रहण सील का रखरखाव, बिजली, पानी एवं अन्य आवश्यक प्रबंध करना।	स्थाई सुविधा का रखरखाव एवं व्यापारी से मधुर संबंध और आपसी तालमेल बनाये रखना।
व्यापारी	बाग का सही दाम लगाना, फलों की सुरक्षा (सौदा तय होने के बाद) करना, तोड़ाई एवं श्रेणीकरण पैकिंग एवं फल परिवहन, बिक्री तथा अन्य कार्यों को निष्पादित करना तथा जोखिम वहन करना।	बाग प्रबंध, फसल सुरक्षा, फसल का सारा प्रबंध एवं बिक्री करना तथा फसल का उचित मूल्य किसान को समय पर देना।	किसान को फसल का सही मूल्य किस्तों में देना, फसल एवं पौधे का पूरा प्रबंध करना, व्यापार के लिए उचित व्यवस्था सुनिश्चित करना, बेहतर ताल मेल एवं आधुनिक ज्ञान द्वारा गुणवत्ता सुधार का प्रयास करना।

और स्थाई समाधान देने में असफल रहता है। एक उदाहरण के माध्यम से मैं 2020 की स्थिति आपके सामने रखता हूँ जिसे समझने का प्रयास करें और सुधार के बिन्दुओं पर ध्यान देने की जरूरत है।

कोविड–19 के कारण जहाँ एक तरफ किसान इस आशंका में थे कि शायद उनका उत्पाद खरीदने के लिए कोई व्यापारी न आये और वहीं दूसरी ओर लीची विपणन में पूर्व से सलग्न लोग (व्यापारी) यह सोचते थे कि पता नहीं फसल कैसी हो। इस सब के बीच व्यापारियों के मन में यह बात भी संतोष देती थी कि यदि फसल ठीक भी हुई तो किसान हमें छोड़कर कहाँ जा सकता है। यह परिस्थिति दुर्भाग्यपूर्ण ही नहीं, लीची फल व्यवसाय के लिए घातक भी थी। इस पर जब प्रशासन और शोध संस्थान के सम्मिलित प्रयास से फसल की गुणवत्ता सुनिश्चित करने में सफलता मिली, तो व्यापारी किसानों से फसल खरीदने को तैयार तो हुए परन्तु बाजार अनिश्चितता की बात कह कर ढीले प्रयास किये । लीची उत्पादक संघ एवं अन्य संस्थागंत प्रयासों से एक निजी कम्पनी ने जब अपने टीम एवं संसाधन से लीची फलों को बंगलौर भेजने के लिए तैयार हुइ, तब उसे अच्छे फल मिलने में बड़ी मसक्कत करनी पड़ी और अंत में मात्र 3–4 ट्रिप ही बंगलौर के बाजार तक जा सका । इस प्रयास में जो शीत वाहन पूरे खर्च के साथ लगाया गया वह भी अपनी पूर्ण क्षमता के अनुसार फलों को नहीं ले जा सका क्योंकि उस कम्पनी का न तो कोई पूर्व सर्म्पक था और न ही कोई उत्तरदायत्वि । अतः यदि पहले से सम्पर्क, आपसी बातचीत से सहमति होती तो शायद और अधिक व्यापार या निर्यात हो सकता था। दूसरी बात जैसा कि निर्यातक कम्पनी ने बताया कि फलों की रिटेल पैकिंग बंगलौर में की जायेगी अतः जो प्रक्रिया कम्पनी बंगलौर के अपने पैक हाउस अथवा गोदाम (वातानुकूलित) में करके 500 ग्राम या 1 किग्रा की पैकेट बना कर फलों को सुपर मार्केट एवं बड़े बाजारें में भेज रही थी, वह यदि स्थानीय स्तर पर पैक हाऊस बनाकर किया जाता जो शायद कम परिश्रम में आसानी से हो सकता था और यहाँ के युवाओं को रोजगार भी मिलता ।

इस पूरे प्रकरण एवं घटनाक्रम से जो बाते उभर कर समाने आती है उन्हें सूचीबद्ध करके उस पर सभी भागीदारों को इमानदारी पूर्वक एवं पूर्ण मनोयोग से काम करने की जरूरत है तभी लीची के विपणन और उसके उत्पादन से जुड़े किसानों का कल बेहतर हो सकता है।

1. बाग का बेहतर प्रबंध और उसमें समय–समय पर वैज्ञानिकों के सुझावों और अपने अनुभवों के समावेश द्वारा बेहतर उत्पादन और गुणवत्ता के लिए प्रयास।
2. किसानों का डाटा बेस तथा उत्पादन क्षमता का सटीक आंकलन।
3. कृषि उपादान विक्रेताओं का सूचीकरण तथा लीची उत्पादन में प्रयोग होने वाले पदार्थो की ससयम उपलब्धता तथा गुणवत्ता सुनिश्चित करना ।
4. परिवहन के साधन, उपलब्ध कराने वालों, डिब्बा या कार्टून सप्लाई करने वालों, का पंजीकरण।
5. पैकहाऊस इकाई की स्थापना तथा मानक के अनुरूप सुविधाओं का विकास।
6. प्रसंस्करण इकाईयों की स्थापना तथा पंजीकरण।
7. लीची उत्पादक किसान संस्थानों ;थ्च्द्ध का गठन एवं आधारभूत सुविधाओं की स्थापना ।
8. सरकार के स्तर पर किसानों, व्यापारियों तथा अन्य भागीदारों को फसल बीमा या जोखिम सुरक्षा प्रदान करने की रणनीति बनाई जाय।
9. लीची का ब्राण्ड स्थापित करने के लिए निवेशकों को बढ़ावा दिया जाय तथा निवेशकों के हितों की सुरक्षा के लिए यथोचित उपाय किये जाय।

हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि लीची की खेती जो अभी तक शौकिया तौर पर की जाती थी उसे व्यवसायिक रूप देने का समय आ गया है। जब लीची वास्तविक रूप से जीविका के साधन के रूप में देखा जायेगा और उसमें संलग्न जमीन एवं प्राकृतिक संसाधनों के वास्तविक मूल्य के अनुसार उत्पादन और उत्पादकता की सोच विकसित की जायेगी तब स्वतः ही मूल्य, व्यापार, विपणन एवं आधार भूत सुविधाओं का विकास हो सकेगा और नीतिगत फैसले भी किसानों के हित में होने लेगेंगे। अनेक फल फसलों के उदाहरण हमारे सामने हैं उनसे सीख लेकर हमें लीची की बेहतर

गर्डलिंग : लीची में नियमित फल लाने की तकनीक

अमरेन्द्र कुमार, रामाशीष कुमार एवं अजय कुमार रजक
भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

लीची एक सदाबहार फल वृक्ष है जिसकी खेती मुख्य रूप से बिहार, झारखंड, उत्तराखंड, बंगाल आदि राज्यों में की जाती है। बिहार के उत्तरी क्षेत्र मुजफ्फरपुर, वैशाली, पूर्वी चम्पारण एवं समस्तीपुर के लगभग 65 प्रतिशत क्षेत्रफल में इसकी खेती की जाती है।

लीची किसानों के आय का एक प्रमुख स्रोत है, परन्तु चाइना लीची में अनियमित फलन एवं गुणवत्ता में कमी होने से किसान एवं लीची से आधारित व्यावसायिक लोगों के लिए समस्या उत्पन्न होती है जिसका प्रतिकूल प्रभाव उनकी आय पर पड़ता है। प्रतिवर्ष फल लगने की अनियमितता विशेषकर चाइना लीची के प्रजाति में देखी जाती है। इसमें देखा गया है की फलन एक वर्ष अधिक और अगले वर्ष बहुत ही कम या नहीं होती है। जिस वर्ष फलन नहीं होता है उस वर्ष ज्यादा से ज्यादा वानस्पतिक विकास होता है, परिणामस्वरूप किसानों को उसके लीची बागो से अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता है। राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र के वैज्ञानिकों ने एक तकनीक विकसित किया है जिसे गर्डलिंग कहते है। जिसको अपनाकर किसान अपने लीची बाग से प्रतिवर्ष नियमित फल लेकर एक अच्छी आमदनी प्राप्त कर सकते हैं। इस गर्डलिंग तकनीक को सम्पूर्ण विवरण प्रदर्शित किया है जिससे किसान आसानी से सीखकर अपना सकते हैं।

गर्डलिंग क्या है

गर्डलिंग एक ऐसी तकनीक है जिसमें पौधे के प्राथमिक शाखाओं के आधार भाग में छाल को करीब 3 से 4 मिलीमीटर मोटाई तक गोले के आकार में काट कर हटा दिया जाता है जिसे गार्डलिंग कहते है।

गर्डलिंग से पहले कुछ खास सिद्धांत

पौधे के प्राथमिक शाखाओ की पहचान

- ☑ सर्वप्रथम पौधे के प्राथमिक शाखाओ की संख्या को देखते हुए वैसे शाखाओं को गर्डलिंग के लिए चिन्हित करे जो मजबूत एवं उसमे छोटी–छोटी शाखाएं काफी विकसित हो।
- ☑ किसी भी पौधे की 75 प्रतिशत तक शाखाओं में ही गर्डलिंग करे।
- ☑ ध्यान रहे की जो सबसे कमजोर शाखा की गर्डलिंग ना करें।
- ☑ शेष बचे हुए शाखाओ को छोड़ दे जिससे की उचित मात्रा में जड़ को जीवित रखने के लिए खाद्य पदार्थो का संचरण होता रहे।
- ☑ केवल प्रौढ़ पौधे की शाखाओ में ही गर्डलिंग करे और ज्यादा नवजात पौधे जो फलन योग्य नहीं हो उसे गर्डलिंग नहीं करे।
- ☑ गर्डलिंग के दौरान 3–4 मिलीमीटर छाल निकालते समय यह ध्यान रहे की पौधे की जाइलम उत्तक (काष्ट) क्षतिग्रस्त नहीं हो पाए।

गर्डलिंग में उपयोग होने वाले औजार

1) तेज चाकू
2) छोटी आरी
3) ब्रश (1 इंच साइज)
4) मोटाई मापने के लिए वर्नियर कैलिपर्श / स्केल
5) गर्डलिंग चाकू

गर्डलिंग करने की समय सीमा

लीची की व्यावसायिक किस्म में गर्डलिंग करने की उचित समय :

शाही : अगस्त माह के अंतिम सप्ताह से सितम्बर माह के द्वितीय सप्ताह तक, यदि अनियमित फलन की समस्या हो।

चाइना : सितम्बर माह के द्वितीय सप्ताह से सितम्बर के अंत तक।

गर्डलिंग करने के तौर तरीके

पौधे के चिन्हित शाखाओं में आरी या गर्डलिंग चाकू की मदद से 3–4 मिलीमीटर चौड़ाई के छाल को हटा देते है। छल्ला लगभग 130 से 150 दिनों के उपरांत भर जाता है और पौधे को कोई नुकसान नहीं होता है। गर्डलिंग के दौरान हटाए गए छाल के स्थान पर बोर्डो मिश्रण / कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का छिड़काव करें।

गर्डलिंग के उपरांत होने वाले भौतिक परिवर्तन

- गर्डलिंग की हुई शाखाओं में नए पत्तों का निकलना बंद हो जाता है जबकि जिस शाखा / शाखाओं में गर्डलिंग नहीं हुई होती है उसमें लगातार नए कोमल पत्ते का निकलना निरंतर जारी रहता है।
- उचित तरीके से किये गए गर्डलिंग शाखाध्शाखाओं में मंजर का आना निश्चित होता है।
- गर्डल किये गए शाखाओं के फल कम गिरते है।

- गर्डल किये गए शाखाओं में फल हमेशा गुच्छे में होते है।

- गुच्छे में फलो की संख्या में बढ़ोत्तरी होती है।
- फलों की संख्या गर्डल नहीं किये गए पौधों की तुलना में अधिक एवं आकार में बृद्धि होती है।
- **गर्डल शाखाओ में रासायनिक परिवर्तन**
- गर्डल की हुई शाखाओं में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा गर्डल नहीं की गई पौधों/शाखाओं की तुलना में अधिक होती है।
- C/N के अनुपात में बढ़ोत्तरी होती है, जो कि मंजर/फूल निकलने में मदद करता है।

- गर्डल शाखाओ से प्राप्त फलों में TSS (कुल घुलनशील घुला हुआ पदार्थ) की मात्रा गर्डल नहीं किये गए पौधों की तुलना में अधिक होता है।

- **गर्डलिंग से होने वाले लाभ**
- गर्डिलिंग, शाखाओं में मंजर आने में मदद करती है।
- गर्डल किये जाने के उपरांत शाखाओ में वानस्पतिक वृद्धि (नए पत्तो का निकलना) रुक जाती है।
- पौधे की छत्रक बना रहता है।
- फल हमेशा गुच्छे में तथा फलो की संख्या, आकार एवं

गुणवत्ता में बढ़ोतरी होती है।

- फलो को गुच्छे में होने से बैगिग एवं फलो की तुड़ाई में भी आसानी होती है।
- बैगिंग से फल काफी चटक गुलाबी रंग एवं गुणवत्तापूर्ण होते हैं जिससे बाजारों में अच्छे दाम मिलते हैं।
- फलों को गुच्छे में होने से तुड़ाई के दौरान तुराई की लागत में भी कमी आती है।

- उत्पादन में बढ़ोतरी होती है।
- गर्डल किये गए शाखाओ में गूटी से पौधे बनाने की प्रक्रिया में जड़ निकलने में मदद होती है।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पैर पसारती लीची

विशाल नाथ एवं शेषधर पाण्डेय
भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

यद्यपि उत्तर प्रदेश आम का प्रदेश माना जाता है जो देश में आम उत्पादन एवं क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से अग्रणी राज्य है। वर्ष 2000–2001 में उत्तराखंड के प्रदेश से अलग हो जाने के कारण लीची के अधिकतर क्षेत्र नये राज्य के हिस्से में जाता रहा और लीची उत्पादन के क्षेत्रफल में नगण्य प्रदेश बन कर गया। राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड के एक आंकड़े के अनुसार वर्श 2005–06 में उत्तर प्रदेश में मात्र 200 हेक्टेयर लीची के बागीचे थे।

यहाँ यह बताना आवश्यक है कि उत्तर प्रदेश के लगभग 50 जनपद लीची की खेती के लिए उपयुक्त हैं पूर्वी क्षेत्र के जिले जैसे– कुशीनगर, देवरिया, गोरखपुर, बलिया आजमगढ़, महराजगंज, संतकबीर नगर, बस्ती और सिद्धाथनगर, मध्य क्षेत्र के जनपद जैसे– गोण्डा, बलरामपुर, बहराइच, श्रावस्ती, बाराबंकी, सीतापुर, हरदोई, लखनऊ, शाहजहाँनपुर, बरेली, पीलीभीत, लखीमपुर खीरी और पश्चिम क्षेत्र के जिले जैसे– सहारनपुर, श्यामली, मुजफ्फरनगर, बिजनौर, मेरठ, बुलन्दशहर, रामपुर, मुरादाबाद, हापुड, आदि जहाँ की मिट्टी बलुई दोमट और जलवायु उपोश्ण कटिबंधीय है, लीची के बेहतर पैदावार देने में सक्षम हैं। लीची की नियमित रूप से बेहतर पैदावार और गुणवत्ता के कारण इन क्षेत्रों के किसान भी कृषि की विधिधीकरण के दिशा में अग्रसर हो रहे हैं और लीची को एक शसक्त विकल्प के रूप में चुन रहे हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद–राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर द्वारा चलाये गये जागरूकता कार्यक्रमों तथा प्रशिक्षणों के माध्यम से किसानों में यह विश्वास आया है कि लीची की फसल पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कई जिलों में एक नकदी फसल के रूप में आ सकती है। केन्द्र द्वारा सिलसिलेवार कार्यक्रमों, स्थानीय संस्थाओं के सहयोग एवं आधरभूत सुविधाओं व बाजार की नजदीकी के कारण पश्चिमी उत्तर प्रेदेश लीची की खेती में तेजी से अग्रसर हो रहा है। जिसका नतीजा है कि वर्ष 2017–18 में उत्तर प्रदेश में लीची का क्षेत्रफल लगभग दोगुने रफ्तार से बढ़ते हुए 3200 हेक्टेयर (5–15 वर्ष) के मध्य पहुँच गया हैं परन्तु उत्पादन में अभी अपना छाप नहीं छोड़ पाये हैं क्योंकि पौधे अभी वानस्पतिक अवस्था में हैं परन्तु जो कुछ पौधे फलत में पूरी तरीके से आ गये हैं उनका प्रर्दशन बहुत ही उत्कृष्ट है। ऐसे ही एक प्रगतिशील किसान है श्री अमित कुमार हैं जो सहारनपुर में 15–16 वर्ष पहले लीची के शाही किस्म के बाग को 10X10 मीटर की दूरी पर लगाये थे और इस वर्ष उन्हें औसतन 125–150 क्रिग्रा. फल प्रति वृक्ष प्राप्त हुआ है। यह इस बात का द्योतक है कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश लीची उत्पादन का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बन सकता है।

राष्ट्रीय लीची अनुंसधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर ने पिछले 10 वर्षों में भारतीय फसल प्रणाली शोध संस्थान मेरठ एवं केन्द्रीय आलू अनुसंधान केन्द्र, मेरठ तथा कृषि विज्ञान केन्द्रों के साथ मिलकर मेरठ और आस–पास के किसनों को प्रशिक्षण और प्रक्षेत्र प्रत्यक्षण आयोजित करके उनमें लीची के प्रति जागरूकता पैदा किया है और उत्तम बाग प्रबंध के तकनीकों को अपनाकर क्षत्रक प्रबंध द्वारा अच्छी गुणवत्ता के लीची उत्पादित करने के गुर सिखाये हैं। इस प्रयास में डॉ. मनोज कुमार, डॉ. दुष्यंत मिश्रा और श्री राजपाल सिंह (जग जीवन राम अभिनव कृषि पुरस्कार से सम्मानित किसान) का विशेष सहयोग रहा है।

वर्श 2019–20 में लीची के प्रर्दशन से प्रभावित

होकर बड़ी संख्या में किसान लीची बागवानी के तरफ अग्रसर हुए हैं। कुछ ऐसे किसानों की सूची नीचे दी गई है। ये सब किसान लीची की सुधारी हुई और व्यवसायिक किस्मों गण्डकी सम्पदा, गण्डकी लालिमा, शाही, चायना, बेदाना, आदि की बागवानी प्रारंभ कर चुके हैं। उत्तम गुणवत्ता के पौधों को अनुसंधान केन्द्र से लेकर उचित गड्ढ़ा बनाकर समय पर पौध रोपण एवं स्थापना द्वारा लीची को सफल बना रहे हैं।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश एवं तराई क्षेत्र, लीची की नयी कहानी लिखने को तैयार हैं। ज्ञान के सम्प्रेषण एवं किसानों के प्रशिक्षण तथा आधारभूत सुविधा विकास द्वारा इसे व्यवसायिक रूप दिया जा सकता है जिससे इस क्षेत्र में रोजगार सृजन के साथ–साथ लीची निर्यात को बढ़ावा मिल सकता है।

क्र.सं.	किसान का नाम	जिला	मोबाईल
1.	श्री अनिल तॅवर	मुजफ्फरनगर	9811233060
2.	श्री सुखपाल सिंह	सहारनपुर	8218813226
3.	श्री कृश्णलाल बजाज	सहारनपुर	9412232400
4.	श्री अमित कुमार	सहारनपुर	8218013207
5.	श्री संजय गोयल	बिजनौर	7599997979
6.	श्री शेखर पुण्डीर	शामली	8449189397

लौंगन के साथ हल्दी की खेती

शेषधर पाण्डेय, इवनिंग स्टोन मार्बोह एवं जयप्रकाश वर्मा
भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

लौंगन एक नया फल वृक्ष है जो कि 'ड्रेगन आई' नाम से भी जाना जाता है। इसका वैज्ञानिक नाम डाइमोकारपस लोंगन है जो कि सैपेण्डेसी परिवार का एक सदस्य है। इसका वृक्ष लीची जैसा ही होता है और इसका फल लीची के फल आने के एक दो माह बाद आता है। कई लोग इसे लीची भी समझ कर भ्रमित हो जाते हैं। फल गुच्छे में आता है और फल का वनज 10–12 ग्राम होता है। फलों का रंग हल्का पीला–भूरा होता है जो कि आलू बूखारा जैसा लगता है। गूदा सफेद व पारदर्शी एवं मीठा होता है उसका बीज गोल, चमकदार काला रंग को होता है जो कि गूदे से घिरा रहता है। फलों का छिलका चिकना होता है जबकि लीची का खुरदरा होता है। इस फल की विशेषता यह है कि यह फल लीची के समाप्त हो जाने के बाद अगस्त के माह में पकता है। इस फल में लीची के समान जलन व फटन की समस्या नहीं होता है। इस फसल में उत्पादकता की बहुत संभावनाएं हैं इसको फल को ताजा फलों के रूप में खाने में उपयोग किया जाता है। लौंगन फल थायमिन, राइबोफ्लेवीन, नियासीन, विटामिन सी, पोटैशियम, ताँबा, मैगनीज, वसा, कार्बोहाइड्रेट एवं ऊर्जा का अच्छा स्रोत है। ग्लूकोज व फ्रक्टोज की मात्रा अधिक व अम्ल की मात्रा कम होती है जिससे फलों में मिठास लीची की तुलना में अधिक होता है।

स्थिति

यह लीची के साथ–साथ व्यवसायिक रूप से चाइना, थाइलैण्ड एवं वियतनात में उगाया जाता है। भारत के उत्तर बिहार में इसको देखा जा सकता है। राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र पर लौंगन में भी कार्य प्रारम्भ हुआ है। लौंगन को अन्य राज्यों जैसे हिमाचल प्रदेश, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल एवं तमिलनाडु में भी उगाया जा सकता है। यद्यपि लौंगन के उपर कोई ध्यान नहीं दिया गया जबकि इसका आगमन भारत में लीची के साथ ही हुआ है क्योंकि तमिलनाडु में 50 वर्ष के पुराने वृक्ष पाये गये हैं। फलों का वजन बहुत कम तथा रंग (हल्का पीला) आकर्षित कने वाला न होने के कारण इसके उत्पादन में ध्यान नहीं दिया गया लेकिन इसकी उत्पादन क्षमता बहुत होने के कारण अब इस पर भी संभावनाएं तलाश की जा रही है। इस फल में किसी भी प्रकार का जलन, फटन व कीट बीमारी का प्रकोप नहीं देखा गया है। उचित जल व पोषक तत्व के प्रबंधन से इसके आकार व गुण को और भी बढ़ाया जाता है। जब लीची में पुष्पन खत्म होता है तब लौंगन में पुष्पन आरंभ होता है और यह मधुमक्खियों के लिए नेक्टर का एक अच्छा स्रोत माना गया हैं लौंगन में फलन जुलाई–अगस्त में आता है। मधुमक्खियों की वनज से इसके उत्पादन में वृद्धि पायी गयी है तथा शहद भी प्राप्त हुआ है जो कि अच्छी गुणवत्ता वाला होता है प्रसंस्कृत उद्योगों में इसकी बहुत संभावनाएं है एवं इससे अनेक उत्पाद जैसे डिब्बाबंद स्क्वैश तथा पेय पदार्थ बनाया जाता है।

उत्पादन

लौंगन को 8 X 8 मीटर की दूरी पर लगाना चाहिये और तुड़ाई के पश्चात्

हल्की कटाई–छँटाई की जानी चाहिए। वर्षा के प्रारंभ होते ही 60 X 60 X 60 सेमी. आकार के गड्ढे लगाने के दो सप्ताह पहले कर लेना चाहिए। नये पौधे की देख रेख प्रारंभ में तीन–चार सालों तक अच्छ से करना चाहिए। लौंगन में फलन तीन–चार साल से प्रारंभ हो जाता है। लौंगन फल वृक्ष पर ही पकता है, जब फल तुड़ाई के लायक हो जाता है और गूदे में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है। दस साल पुराने पौधे से लगभग 20–30 किग्रा. फल प्राप्त होता है।

सारांश

बिहार व आस–पास के राज्यों में लीची के साथ–साथ लौगन को भी लगाया जा सकता है और इससे फलों के उत्पादन के साथ–साथ शहद भी प्राप्त किया जा सकता है।

हल्दी का उपयोग प्राचीन काल से होता आ रहा है। इसमे रंग महक एवं औषधीय गुण पाये जाते है। हल्दी में जैव संरक्षण एवं जैव विनाश दोनो ही गुण विद्यामान है। समाज में सभी शुभ कार्यों में इसका उपयोग किया जाता हैं। हल्दी में कुर्कमीन पाया जाता है।

हल्दी की रासायनिक संरचना

पानी	–	13.1 प्रतिशत
प्रोटीन	–	6.3 प्रतिशत
वसा	–	5.1 प्रतिशत
कार्बोहाइड्रो	–	69.4 प्रतिशत
रेशा	–	2.6 प्रतिशत
खनिज लवण	–	3.5 प्रतिशत

जलवायु: हल्दी एक उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र की फसल है। हल्दी के लिए 30–35 डिग्री से.मी. अंकुरण के समय, 25–30 डिग्री सेन्टीग्रेट, कल्ले निकलते समय 20–30 डिग्री सेंटीग्रेट, प्रकंद बनने तथा 18–20 डिग्री सेन्टीग्रेट हल्दी की मोटाई हेतु उत्तम है।

हल्दी की खेती सामान्यतः सभी प्रकार के सुविधाओं में की जाती है उचित जल निकास वाली बलूई दोमट या चिकनी दोमट मिट्टी जिसमें जीवांश की अच्छी मात्रा होती है। हल्दी के लिए भूमि का पी.एच. मान 6.0 –8.0 के बीच होना चाहिए।

हल्दी के बीज की मात्रा

20 – 25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर

बीजोपचार

बुवाई के पूर्व विकेन्द्रों को थिरम या मैंकोजेव नामक किसी एक दवा की 2.5 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में घोलकर बीज को 30–50 मिनट तक उपचारित करके छाया में सुखाना चाहिये।

भूमि में यदि दीमक लगने की सम्भावना हो तो क्लोरोपाईरोफॉस की 2 मिली. मात्रा प्रति लीटर पानी की दर से मिलाकर उपचारित करना चाहिये।

रोपण का समयः– हल्दी की बीज की बुवाई का उचित समय 15 अप्रैल एवं मई का 15 जुलाई होता है।

सिंचाईः– हल्दी को वर्षा न होने पर 4–5 सिंचाई की आवश्यकता होती है।

हल्दी की उन्नतशील प्रजातियाँ

क्र. सं	प्रजातियाँ	उपज		
		समय	क्विंटल	सूखा
1.	A.C.L. 326 माइदुकुर	9 माह	200–300	19.31
2.	C.L. 327 ठेकुरपेन्ट	5 माह	200–250	21.80
3.	कस्तूरी	7 माह	150–200	25.00
4.	टोमा	8 माह	207	31.1
5.	सूरमा	8 माह	290	24.8
6.	सोनाली	8 माह	270	23

सुगंधा, सुरोमा, सीओ, कृष्ण, राजेन्द्र सोनिया बिहार, सुगुना, सुदर्शन, सुवर्ण, भी अच्छी प्रजातियाँ हैं।

खरपतवारः– हल्दी के सामान्यतः 3–4 निराई गुड़ाई की आवश्यकता होती है। बुवाई के 30–40, 50–60 व 80–90 दिनों के बीच में निराई गुड़ाई करनी चाहिए।

खेत की तैयारी एवं बोने की विधि एवं प्रकंद की मात्रा

4–5 जुताई कर उसे पाटा लगाकर मिट्टी को भुरभुरा एवं समतल कर लिया जाना चाहिए। 20–25 क्विंटल प्रकन्द प्रति हेक्टेयर लगता है। प्रत्येक प्रकन्द में कम से कम 2–3 आँखे होनी चाहिए।

खाद उर्वरकः 20–25 टन सड़ी गोबर या कम्पोस्ट, 100–200 किग्रा. नत्रजन, 60–80 किग्रा पोटॉश।

आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलें एवं खाद्य पदार्थ: वरदान या अभिशाप?

विनोद कुमार[1], अभय कुमार[1] एवं कविता[2]
[1]भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर
[2]वनस्पति एवं पादप कार्यिकी विभाग, डॉ. राजेंद्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा

आनुवंशिक रूप से संशोधित खाद्य पदार्थ उन जीवों से उत्पादित खाद्य हैं जिनके डीएनए को आनुवंशिक इंजीनियरिंग के माध्यम से बदल दिया गया है, जिन्हें जीएम खाद्य पदार्थध आनुवंशिक रूप से संशोधित जीव (जीएमओ) के रूप में भी जाना जाता है। आनुवंशिक इंजीनियरिंग तकनीक परम्परागत तरीकों जैसे कि 'चयनात्मक प्रजनन' और 'उत्परिवर्तन प्रजनन' की तुलना में नये लक्षणों के समावेशन के साथ–साथ लक्षणों पर अधिक नियंत्रण की गुंजाइश देती है। यह तकनीक उन फसलों को बनाने में मदद करती है जो अनावृष्टि एवं सूखाड़ से बच सकती हैं और ऐसे अन्न का उत्पादन करने में मदद करती हैं जो अधिक पौष्टिक हैं। व्यावसायिक पैमाने पर खेतों में उगाई जाने वाली प्रमुख ट्रांसजेनिक (आनुवंशिक रूप से इंजीनियर) फसलें हैं – शाकनाशी (हर्बिसाइड) और कीटनाशक प्रतिरोधी सोयाबीन, मक्का, कपास और कनोला। यद्यपि इस तरह के आनुवंशिक संशोधन का उपयोग पौधों और पशुओं दोनों में किया जाता है, पर यह पशुओं की तुलना में पौधों में अधिक होता है।

वैसे तो यह मानव उपभोग के लिए फायदेमंद लगता है लेकिन फिर भी, जीएम खाद्य पदार्थ विवादास्पद हैं। एक व्यापक वैज्ञानिक आम सहमति है कि बाजार में वर्तमान में आनुवंशिक रूप से संशोधित खाद्य पदार्थ को खाने में नियमित खाद्य पदार्थों की तुलना में कोई भी स्वास्थ्य जोखिम नहीं है। विरोधियों का तर्क है कि आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलें रासायनिक शाकनाशी दवाओं (हर्बिसाइड्स) के उपयोग को बढ़ाएँगे, या इस तथ्य का हवाला देते हैं कि जीएम फसलों का स्वामित्व और पेटेंट अक्सर बड़ी कंपनियों के पास होने से किसानों को समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। इसके कारण इस बात पर बहस शुरू हो गई है कि आनुवांशिक रूप से संशोधित जीव (जीएमओ) एवं खाद्य पदार्थ पर लेबल लगाई जाए या सख्त विनियमित किया जाना चाहिए। वर्तमान में जीएम फसलें उगाने वाले देश हैंरू ब्राजील, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, बोलिविया, फिलीपींस, स्पेन, वियतनाम, बांग्लादेश, कोलम्बिया, होण्डुरास, चिली, सूडान, स्लोवाकिया, कोस्टा रिका, चीन, भारत, अर्जेंटीना, परागुये, उरुग्वे, मैक्सिको, पुर्तगाल, चेक गणराज्य, पाकिस्तान और म्यानमार। स्वीकृत जीएमओ खाद्य पदार्थों में हर्बिसाइड सहिष्णु– सोयाबीन, मक्का , कैनोला, कपास, गन्ना, अल्फाल्फा, और कीट प्रतिरोधी– कपास शामिल हैं।

यदि जनसंख्या का विस्तार ऐसे ही जारी रहा और यदि हमारे पारंपरिक खाद्य आपूर्ति स्रोत अतिरेक उपभोग और धीमी नवीकरण के कारण कम होने लगे, तो हमें आने वाले दशकों में भोजन की गंभीर कमी का सामना करना पड़ सकता है। कुछ वैज्ञानिकों और खाद्य उत्पादकों का मानना है कि आनुवंशिक रूप से संशोधित (जीएम) खाद्य फसलें बढ़ते खाद्य के मांग के बराबर आपूर्ति करने में मदद कर सकती हैं, लेकिन कई अन्य शोधकर्ता और स्वास्थ्य अधिवक्ता आनुवंशिक रूप से संशोधित खाद्य पदार्थों के अग्रगामी विकास और व्यापक उपयोग का विरोध करते हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि इसमें स्वास्थ्य जोखिम है और ये पारिस्थितिकी तंत्र पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकते हैं। अतः, इस आलेख में जीएम खाद्य फसलों एवं खाद्य पदार्थों के विकास के समर्थन एवं खिलाफ में मुख्य बिंदुओं की चर्चा की गई है और अंत में निष्कर्ष स्वरूप समापन टिप्पणी दी गयी है।

जीएम खाद्य पदार्थों के विकास के समर्थन में तर्क

- पारंपरिक रूप से उगाये जाने वाले खाद्य फसलें की तुलना में ये खाद्य फसलें तेजी से बढ़ते हैं। संभवतः

इसी वजह से, बढ़ी हुई उत्पादकता जनसंख्या को अधिक भोजन प्रदान करती है।

- आनुवंशिक रूप से इंजीनियर्ड खाद्य फसलों को प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों वाले स्थानों पर उगाया जा सकता है। ये फसलें उन स्थानों के लिये एक वरदान हैं जहाँ लगातार अनावृष्टिध सूखाड़ की परिस्थिति होती है, या जहाँ मिट्टी कृषि के लिए उपयुक्त नहीं है।
- इनमें पोषक तत्वों की मात्रा अधिक पायी गई है और पारंपरिक रूप से उगाये गये खाद्य पदार्थों की तुलना में खनिजों और विटामिनों की मात्रा भी अधिक होते हैं। इसके अलावा, इन खाद्य पदार्थों को बेहतर स्वाद के लिए भी जाना जाता है।
- इनकी शेल्फ लाइफ अधिक होती है और इसलिए खाद्य पदार्थों के जल्दी खराब होने का डर कम है।
- जीएम खाद्य पदार्थों में दुनिया की कई भूख और कुपोषण की समस्याओं को हल करने की क्षमता है। साथ ही, कृत्रिम कीटनाशकों और शाकनाशियों पर निर्भरता को कम करके एवं उपज को बढ़ाकर पर्यावरण की रक्षा और संरक्षण में मदद करने की क्षमता है। इस प्रकार के आनुवांशिक संशोधन के पीछे मुख्य औचित्य फसल सुरक्षा है। ऐसी फसलों में कीटों या वायरस द्वारा फैलनेवाले रोगों के प्रति रोग–प्रतिरोधिता होने के कारण किसानों को अधिक पैदावार और अधिक आकर्षक उत्पाद मिलते हैं।
- आनुवंशिक रूप से संशोधन पोषण तत्वों की मात्रा, गुणवत्ता एवं स्वाद को बढ़ा सकता है। ये सभी कारक उपभोक्ता के लिए उत्पाद की कीमतों को कम करने में योगदान करते हैं। वे यह भी सुनिश्चित करते हैं कि गुणवत्ता वाले भोजन की पहुँच अधिक से अधिक लोगों तक हो।
- जीएम फसलों का पर्यावरण पर सकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। वर्तमान कृषि पद्धतियाँ पर्यावरण की दृष्टि से बहुत हानिकारक हैं, जबकि कीट और खरपतवार प्रतिरोधी जीएम फसलें रासायनिक कीटनाशकों और शाकनाशियों पर किसानों की निर्भरता को बहुत कम कर देंगी।
- जीएम फसलों में विश्व भूखमरी की समस्या को कम

बीटी कपास: एक आनुवंशिक रूप से संशोधित जीव (जीएमओ)। यह एक कीट प्रतिरोधी कपास की किस्म है, जो बोलवॉर्म कीट का मुकाबला करने के लिए एक कीटनाशक टॉक्सिन पैदा करता है जिससे कीटों से होनेवाले नुकसान में कमी आती है। प्रतिरोधकता के लिए इसके जीनोम में मिट्टी के जीवाणु बेसिलस थुरिन्जिएनसिस का क्रिस्टल प्रोटीन जीन डाला गया है।

करने की क्षमता है। इन्हें पारंपरिक फसलों की तुलना में अधिक तेजी से विकसित करने, उत्पादकता बढ़ाने और फसल चक्र को जल्दी पूर्ण कर लेने के लिए संशोधित किया जा सकता है, जिसका अर्थ है– अधिक खाद्य उपज। इसके अलावा, पोषक तत्व संवर्धित फसलें कुपोषण की समस्या को दूर कर सकती हैं, और खास इंजीनियर्ड फसलें सूखे या प्राकृतिक आपदा ग्रस्त क्षेत्रों उगाई जा सकती है।

- प्राकृतिक रूप से टीकों के उत्पादन और उनके ग्रहण के लिए जीएम फसलों का विकास किया जा रहा है। विकासशील देशों में लोगों के स्वास्थ्य की रक्षा और महामारी से बचाव के लिए यह एक महत्वपूर्ण कदम है।
- जीएम खाद्य पदार्थ का एक और महत्वपूर्ण फायदा लंबी दूरी के परिवहन का सामना करने के लिए इसकी बढ़ी हुई क्षमता है। जीएम फसलों की तुड़ाई तब भी हो सकती है है जब वे हरे रंग के होते हैं जो परिवहन के दौरान पक जाते है, इस वजह से इनकी शेल्फ लाइफ लंबी होती है। शिपिंग और भंडारण की अवधि लंबे होने के बाबजूद भी उत्पाद बिना खराब हुये अपने गंतव्य तक पहुंच जाता है। इसके अलावा, जीएम फसलों को अत्यधिक हैंडलिंग और परिवहन से होनेवाले संभावित नुकसान से बचाने के लिए संशोधित किया जाता है ताकि वे उपभोक्ता तक पहुंचने पर ताजा और परिपक्व रहे।
- आनुवंशिक रूप से संशोधित बीजों और उत्पादों का मानव उपभोग के लिए सुरक्षित होने का परीक्षण किया जाता रहा है, और जीएम खाद्य पदार्थ के सेवन से उत्पन्न कोई मानव बीमारी का कभी भी पुष्टीकरण नहीं किया गया है। बल्कि, फसलों में डीएनए को संशोधित करके कई खाद्य–जनित एलर्जी को भी रोकने में सक्षम हो सकते हैं।

जीएम खाद्य पदार्थों के विकास के खिलाफ में तर्क

जीएम खाद्य पदार्थों से सबसे बड़ा खतरा यह है कि वे मानव शरीर पर हानिकारक प्रभाव डाल सकते हैं। यह माना जाता है कि इन आनुवंशिक रूप से इंजीनियर खाद्य पदार्थों के सेवन से उन बीमारियों का विकास हो

बीटी बैंगन: आनुवांशिक रूप से संशोधित बैंगन की किस्म। बैंगन की यह किस्म कीटों के खिलाफ प्रतिरोध देने के लिए विकसित किया गया है। यह बैंगन के जीनोम में मिट्टी के जीवाणु बेसिलस थुरिन्जिएनसिस का क्रिस्टल प्रोटीन जीन डालकर बनाई गई है। बीटी बैंगन में कीटों, विशेष रूप से टहनी और फल बेधक कीट का प्रकोप नहीं होता है।

सकता है जिनमें एंटीबायोटिक दवाओं के प्रति प्रतिरक्षा हैं। चूँकि स्वास्थ्य प्रभाव अज्ञात हैं, बहुत से लोग इन खाद्य पदार्थों से दूर रहना पसंद करते हैं। निर्माता लेबल पर इसका उल्लेख नहीं करते हैं कि खाद्य पदार्थ आनुवंशिक हेरफेर द्वारा विकसित किए गए हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि यह उनके व्यवसाय को प्रभावित करेगा, जो एक अच्छी परिपाटी नहीं है।

कई धार्मिक और सांस्कृतिक समुदाय ऐसे खाद्य पदार्थों के खिलाफ हैं क्योंकि वे इसे अप्राकृतिक तरीके उगाये गए खाद्य पदार्थों के रूप में देखते हैं। विशेषज्ञों की यह भी राय है कि ऐसे खाद्य पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि के साथ विकासशील देशों की औद्योगिक देशों पर अधिक निर्भरता शुरू हो जायेगी क्योंकि यह संभावना है कि आने वाले समय में उनके द्वारा खाद्य उत्पादन को नियंत्रित किया जाना शुरू हो जाएगा। इसमें शामिल मुख्य चिंताएँ हैं:

- आनुवंशिक संशोधन मूलभूत रूप से चयनात्मक प्रजनन की तुलना में और अधिक समस्याग्रस्त है क्योंकि यह प्रजातियों के बीच जीन को उन तरीकों से स्थानांतरित करता है जो कभी भी स्वाभाविक रूप से नहीं हो सकते।
- एलर्जेनिसीटी: एलर्जीनिक जीवों से गैर–एलर्जी जीवों में जीन का स्थानांतरण हो सकता है। पारंपरिक प्रजनन विधियों का उपयोग करके विकसित किए गये खाद्य पदार्थों को आम तौर पर एलर्जी के लिए परीक्षण नहीं किया जाता है। जीएम खाद्य पदार्थों के परीक्षण के लिए प्रोटोकॉल का मूल्यांकन खाद्य और कृषि संगठन, संयुक्त राष्ट्र (एफ. ए.ओ.) और डब्ल्यू.एच.ओ. द्वारा किया गया है। अभी तक बाजार में वर्तमान में उपलब्ध जीएम खाद्य पदार्थों के सापेक्ष कोई एलर्जी प्रभाव नहीं पाया गया है।
- एंटीबायोटिक प्रतिरोधकता: जीएम खाद्य पदार्थों से शरीर के कोशिकाओं में या जठरांत्र संबंधी मार्ग में बैक्टीरिया को जीन स्थानांतरण, चिंता का कारण होगा यदि हस्तांतरित आनुवंशिक सामग्री मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। यह विशेष रूप से प्रासंगिक होगा यदि एंटीबायोटिक प्रतिरोध जीन को स्थानांतरित किया जाता है। हालांकि स्थानांतरण की संभावना कम है, जीन ट्रांसफर तकनीक का उपयोग जिसमें एंटीबायोटिक प्रतिरोध जीन शामिल नहीं है, को प्रोत्साहित किया जाता है।
- आउटक्रॉसिंग: जीएम पौधों से जीनों का स्थानांतरगमन पारंपरिक फसलों या संबंधित जंगली प्रजातियों में हो जाने को 'आउटक्रॉसिंग' कहा जाता है। इसका अप्रत्यक्ष प्रभाव सुरक्षित खाद्य और खाद्य सुरक्षा पर पड़ सकता है। ऐसे मामलों की रिपोर्ट हुई है जहाँ पशु आहार या औद्योगिक उपयोग के लिए अनुमोदित जीएम फसलों के अवशेष निम्न स्तर पर मानव उपभोग के लिए तैयार उत्पादों में पाया गया। कई देशों ने ऐसी रणनीतियों को अपनाया है जहाँ जीएम फसल और पारंपरिक फसल के खेतों के बीच एक स्पष्ट अलगाव दूरी बनाकर उगाया जाता है ताकि मिश्रण न हो ।
- जीएम उत्पादों का पर्याप्त स्वतंत्र अध्ययन नहीं किया गया है ताकि यह पुष्टि हो सके कि वे उपभोग के लिए सुरक्षित हैं। इसके अलावा, संभावित स्वास्थ्य जोखिम भी हैं अगर पशु आहार या अन्य उपयोगों के लिए मंजूर जीएम उत्पादों को गलती से या अनजाने में मानव उपभोग के लिए भोजन के उत्पादन में उपयोग किया जाता है।
- जीएम फसलों का उपयोग पूरी तरह से नियंत्रित नहीं किया जा सकता है, इसलिए वे पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने की क्षमता रखते हैं। अनजाने में पर–परागण द्वारा जीनों के संयोजन से "सुपर वीड" अर्थात "एक ज्यादा नुकसानदायक जंगली घास" के निर्माण की प्रक्रिया शुरू हो सकती है। कीट–प्रतिरोधी फसलें कीटों को नुकसान पहुंचा सकती हैं जो कि नुकसानदेह नहीं हैं और 'कीट और रोग प्रतिरोधी फसलें' और भी अधिक विषैले प्रजातियों के विकास को उत्प्रेरित कर सकती हैं, जिन्हें प्रबंधन के लिए तब बहुत आक्रामक नियंत्रण उपायों की आवश्यकता पड़ सकती है– जैसे रासायनिक छिड़काव का ज्यादा उपयोग।
- क्योंकि बड़े निगम कंपनियाँ जीएम बीज फसलों का निर्माण और पेटेंट करते हैं, वे बाजार को नियंत्रित करेंगे, जिसका अर्थ है कि विकासशील देशों में गरीब किसान इन निगमों पर निर्भर हो जाएंगे। ये

परिस्थितियां विश्व में भूखमरी की समस्या को खत्म करने की बजाय और बढ़ावा दे सकती है।

- नये जीवन रूपों का निर्माण और पेटेंट अनैतिक है। एक पौधे में बाहरी जीन का प्रवेश, विशेष रूप से एक जानवर से लिया गया जीन, कई धार्मिक और सांस्कृतिक समूहों के लिए रोषकारी है और प्रकृति के संतुलन को खराब करता है।

निष्कर्ष

यद्यपि आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलें दुनिया भर में भोजन की कमी की समस्या को दूर के लिए एक संभावित समाधान प्रदान करती हैं तथापि उनकी खेती की व्यवहार्यता संदिग्ध बनी हुई है। जीएम फसलों द्वारा बढ़ाये गये उत्पादन में पर्यावरण और स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं जैसी छिपी लागत भी है। अतः, यह मुद्दा अब भी विवादास्पद है और आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलों का भविष्य अनिश्चित बना हुआ है। जीएमओ कुछ विशिष्ट चुनौतियों को संबोधित करने के लिए बिलकुल फिट है। यदि भारत में जीएम प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जाना है, तो इसे भारतीय किसानों की वास्तविक जरूरतों पर निर्देशित किया जाना चाहिये– जैसे दलहनी फसलें (लेग्युम्स), तिलहन और चारे जैसी फसलों में प्रयोग, और सूखाड़ सहिष्णुता और लवणता सहिष्णुता जैसी विशेषतायें ।

अदरक की खेती

प्रणव पाण्डेय एवं रणजीत कुमार
वीर कुँवर सिंह कृषि महाविद्यालय, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, डुमरॉव, बक्सर

अदरक (*ज़िंजिबर ओफिसिनेल* रोस्क.) एक द्विवर्षीय या बहुवर्षीय शाकीय पादप है, जिसका उपयोगी भाग भूमिगत एवं रूपान्तरित तना (राइज़ोम या प्रकंद) होता है जो मिट्टी के अन्दर क्षैतिज दिशा में बढ़ता है। संस्कृत में इसे 'श्रंगवेर' कहा जाता है जिसका अर्थ हिरण के सींग जैसे आकार वाला है। यह एक महत्वपूर्ण मसाला फसल एवं औषधीय पादप है। मसाले के रूप में, व्यंजनों, चटनी, जैली, सब्ज़ियों, शर्बत, लड्डू एवं चाट आदि में कच्ची तथा सूखी अदरक का उपयोग किया जाता है और औषधियों के रूप में इसे सर्दी–जुकाम, खाँसी, खून की कमी, पथरी, लीवर वृद्धि, पीलिया, पेट के रोग, तथा वायु रोग के लिये दवाओं में उपयोग किया जाता है। इसके अन्य चिकित्सा संबंधी गुणों में रक्त प्रवाह को बढ़ाना, शरीर एवं गुर्दों से विषैले पदार्थ निकालना, त्वचा पोषण आदि सम्मिलित हैं।

अदरक के उत्पादन में भारत विश्व में अग्रणी है और इसके बाद चीन और जापान का स्थान है। हमारे देश में अदरक उत्पादन करने वाले प्रमुख राज्य असम, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, हरियाणा, ओडीशा, कर्नाटक हैं। कुल अदरक उत्पादन का लगभग 50 प्रतिशत भाग कच्ची अदरक के रूप में उपभोग किया जाता है जब कि 30 प्रतिशत भाग सूखे अदरक (सोंठ) के रूप में परिवर्तित कर उपभोग किया जाता है एवं शेष भाग बीज सामग्री के रूप में उपयोग किया जाता है। विश्व में प्रति वर्ष अदरक की मांग बढ. रही है जिससे भारतीय अदरक को निर्यात करने की अपार सम्भावनाएं प्रतीत हो रही हैं। केरल राज्य से मुख्यतः सूखे अदरक का उत्पादन और निर्यात किया जाता है।

जलवायु एवं मृदा :

अदरक की खेती गर्म और आर्द्रता वाली जलवायु में अच्छी होती है। मध्यम वर्षा बुवाई के बाद अदरक की गाँठों (राइज़ोम) के अंकुरण के लिये आवश्यक होती है। इसके बाद थोड़ा अधिक एवं सुवितरित वर्षा पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक होती है तथा फसल के अन्त में खुदाई के एक माह पूर्व से सूखी जलवायु अदरक की सफल खेती के लिए उपयुक्त होती है। अदरक की सफल खेती के लिए औसत तापमान 28° से 32° डिग्री सेन्टीग्रेड उपयुक्त होता है। अगेती बुवाई अथवा रोपण अदरक की खेती के लिये लाभकारी होता है।

अदरक की खेती के लिए बलुई दोमट मृदा जिसमें प्रचुर मात्रा में जीवांश या कार्बनिक पदार्थ हो, जिसका पी. एच. मान 5.5 से 6.5 के बीच हो, एवं अच्छे जल निकास वाली हो, उपयुक्त होती है। अदरक फसल का खेत से प्रचुर मात्रा में जीवांश या कार्बनिक पदार्थ का दोहन करने वाली प्रवृति होने के कारण एक ही खेत में वर्ष दर वर्ष अदरक की खेती नहीं करनी चाहिए बल्कि उपयुक्त फसल चक्र अपनाना चाहिए एवं परिस्थितियों के अनुरूप बारी बारी से कम समय में पकने वाली फलीदार फसलों का उत्पादन किया जाना चाहिए। एक ही भूमि पर बार–बार फसल लेने से भूमि जनित रोग एवं कीटों में वृद्धि भी होती है।

प्रजातियाँ :

अदरक की प्रजातियाँ मुख्य रूप से दो भागो में विभाजित हैं – स्थानीय किस्म एवं उन्नत प्रजातियाँ। स्थानीय किस्मों का नाम जिन स्थानों पर उगाई जाती है उसी जगह के नाम से रखा गया है। देश में अदरक की खेती के लिए विभिन्न क्षेत्रो में स्थानीय किस्मों का उपयोग किया जाता है जैसा कि केरल में एरनाड, वायनाड, मारन, उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र में नदिया, असम लोकल, चायना और हिमाचल प्रदेश एवं कर्नाटक में हिमाचल। एक विदेशी किस्म 'रियो–डी–जिनेरियो' भी उत्पादकों में बहुत लोकप्रिय है। निम्नलिखित तालिका में

तालिका 1. स्थानीय एवं विदेशी किस्में एवं उनकी प्रमुख विशेषताएं:

किस्में	औसत उपज (टन/हे.)	फसल अवधि (दिन)	शुष्क उपज (%)	रेशा (%)	ओलिओरेसिन (%)	उत्पादित तेल की मात्रा (%)
चाइना	9.50	200	21.00	3.40	7.00	1.90
असम	11.78	210	18.00	5.80	7.90	2.20
मारन	25.21	200	20.00	6.10	10.00	1.90
हिमाचल	7.27	200	22.10	3.80	5.30	0.50
नदिया	28.55	200	22.10	3.90	5.40	1.40
रियो–डी–जिनेरियो	17.65	190	22.60	5.60	10.50	2.30

तालिका 2. उन्नत प्रजातियाँ एवं उनकी प्रमुख विशेषताएः

किस्में	औसत उपज (टन/हे.)	फसल अवधि (दिन)	शुष्क उपज (%)	रेशा (%)	ओलिओरेसिन (%)	उत्पादित तेल की मात्रा (%)
वरदा	22.60	200	20.70	3.90	6.70	1.75
सुप्रभा	16.60	229	20.50	4.40	8.90	1.90
सुरूचि	11.60	218	23.50	3.80	10.00	2.00
सुरवी	17.50	225	23.50	4.00	10.20	2.10
हिमगिरी	13.5	230	20.60	6.40	4.30	1.60
महिमा	23.20	200	19.00	3.26	4.50	1.72
रेजाता	22.40	200	23.00	4.00	6.30	2.36

स्रोतः भारतीय मसाला फसल अनुसंधान संस्थान (IISR), कोझीकोड

स्थानीय एवं विदेशी किस्मों एवं उन्नत प्रजातियाँ की प्रमुख विशेषताओं को बताया गया है।

खेत की तैयारी :

अप्रैल महीने में खेत की गहरी जुताई एम.वी. पलाऊ से करने के बाद खेत को सोलराएजेसन के लिए खुला धूप में छोड़ देना चाहिए और मई के महीने में डिस्क हैरो या रोटावेटर से जुताई करके मृदा को भुरभुरा बना लेना चाहिए और साथ में सड़ी गोबर की खाद लगभग 25–30 टन प्रति हेक्टर की दर से मृदा में अच्छी तरह मिला देना चाहिए जिससे सिचाई या पहली वर्षा के तुरंत बाद खेत पूरी तरह बुवाई के योग्य तैयार हो जाता है। सिंचाई की सुविधा एवं बोने की विधि के अनुसार तैयार खेत को छोटी–छोटी क्यारियों में बाँट लिया जाता है। उर्वरकों की अनुशंसित मात्रा का आधारीय प्रयोग अंतिम जुताई के समय किया जाता है और शेष उर्वरकों को खड़ी फसल में प्रयोग किया जाता है।

फसल उगने के लिए खेत का रेखांकन दो विधियों से किया जाता है।

1. ऊँची क्यारी एवं कुंड विधि : क्यारी की माप 15 सेमी. ऊँची, 1 मीटर चौड़ी, सुविधानुसार लम्बाई और क्यारी से क्यारी की दूरी 50 सेमी होनी चाहिए।

2. रिज एवं कूड़ विधि : कूड़ से कूड़ की दुरी 40–45 सेमी, सुविधानुसार लम्बाई एवं कूड़ की उचाई 15 सेमी होनी चाहिए।

बुवाई का समय :

वैसे तो अदरक की बुवाई के लिए अप्रैल से जून माह तक का समय उपयुक्त माना जाता है। लेकिन इसमें भी सबसे उपयुक्त समय 15 मई से 30 मई के बीच का होता है।

पौध अन्तराल :

सामान्यतः प्रकन्दों को 40 से.मी. के अन्तराल पर बोना चाहिए। भूमि की दशा अथवा जलवायु के अनुसार अदरक की रोपाई 15 से.मी. × 15 से.मी., 20 से.मी. × 40 से.मी. अथवा 25 से.मी. × 30 से.मी. पर भी की जा सकती है।

बीज की मात्रा :

अदरक की बीज दर प्रकंदों के टुकडों के आकार, भार, पौध अन्तराल और विभिन्न क्षेत्रों में रोपण पद्धति के अनुसार निर्भर करती है। सामान्यतः 15 – 20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर अदरक प्रकन्द की बीज दर होनी चाहिए। अदरक के प्रकंदों को चयन बीज हेतु 6 – 8 माह की अवधि वाली फसल में पौधों को चिन्हित करके काट लेना चाहिए। बीज के लिए प्रकंदों को 2.5 – 5.0 सेमी. की लम्बाई और 20 से 25 ग्राम के टुकडों में काटना चाहिए और प्रत्येक टुकड़े में कम से कम 3 कलिकाएं होनी चाहिए।

बीजोपचार :

बीज उपचारित करने के लिये मैंकोजेब अथवा कार्बेन्डाजिम की 3 ग्राम मात्रा को प्रति लीटर पानी में घोलें (0.3 प्रतिशत) तथा प्रकन्दों को 30 मिनट तक इस घोल में डुबाकर रखना चाहिए एवं इसके पश्चात इन्हें छांव में 2 घंटे तक सुखाना चाहिए।

पोषण प्रबन्धन :

कार्बनिक खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग मिट्टी परीक्षण के बाद ही करना चाहिए। अदरक लम्बी अवधि एवं उच्च पोषण मांग वाली फसल है। खेत तैयार करते समय 25–30 टन प्रति हेक्टेयर की दर से सड़ी हुई गोबर या कम्पोस्ट की खाद खेत में फैलाकर मिला देना चाहिए। रोपाई से पूर्व शेष गोबर या कम्पोस्ट की खाद (20–25 टन प्रति हेक्टेयर) क्यारियों पर फैला देना चाहिए या रोपण के समय खड्डों में डाल देना चाहिए। रोपण के समय ही नीम की खली 2.0 टन प्रति हेक्टेयर की दर से उपयोग करने पर प्रकंद गलन रोग व सुत्रकृमियों से बचाव तथा उत्पादकता में वृद्धि होती है।

अदरक के लिए अनुशंसित उर्वरकों की मात्रा 75 किग्रा. नत्रजन, 50 किग्रा. फास्फोरस तथा 50 किग्रा. पोटैशियम प्रति हेक्टेयर है। अनुशंसित उर्वरकों की मात्रा को 3 भाग में बांटकर निम्नलिखित तालिका 3. के अनुसार फसल में प्रयोग करना चाहिए। उर्वरक डालने के बाद प्रत्येक बार उसके ऊपर मिट्टी डालना चाहिए। जिंक की कमी वाली मृदा में में 6.0 किग्रा. जिंक/हे. (या 30 किग्रा. जिंक सल्फेट/हे.) का प्रयोग करने से उपज अच्छी प्राप्त की जा सकती है।

पलवार (मलचिंग) :

अदरक की फसल में रोपाई के तुरंत बाद पलवार बिछाना लाभदायक होता है। पलवार से मृदा में तापक्रम एवं नमी का सामंजस्य बना रहता है। खरपतवार भी बहुत कम निकलते हैं और वर्षा होने पर भूमि का क्षरण भी नहीं हो पाता है। मृदा में जैविक तत्वों की मात्र बढ़ जाती है और अंकुरण भी अच्छा होता है। पलवार के रूप में हरी पत्तियाँ या लम्बी घासें एवं खेत के अन्य अवशेष उपयुक्त माने जाते हैं। पलाश के पत्ते या गन्ने के ट्रेस का भी उपयोग किया जा सकता है।

तालिका 3. अदरक फसल के लिये उर्वरकों का प्रयोग (प्रति हेक्टयर):

उर्वरक	आधारीय उपयोग	40 दिन बाद	90 दिन बाद
नत्रजन	-	37.50 किग्रा.	37.50 किग्रा.
फास्फोरस	50.0 किग्रा.	-	-
पोटाश	25.0 किग्रा.	25.0 किग्रा.	-
गोबर खाद	25-30 टन	-	-
नीम खली	2 टन	-	-

स्रोतः भारतीय मसाला फसल अनुसंधान संस्थान (IISR), कोझीकोड

जल प्रबन्धन :

अदरक फसल, पानी के प्रति बहुत ही संवेदनशील है। अतः समुचित जल प्रबन्धन इसकी मुलभूत आवश्यकता है। इसलिये खेत में उपयुक्त नमी एवं वर्षा के दिनों में या अन्य समय पर खेत में जल भराव की स्थिति में उत्तम जल निकास का प्रबंध होना चाहिए। अप्रैल–मई में लगायी गयी फसल में सिंचाई की तुरन्त आवश्यकता होती है। इसके बाद मानसून आने आने तक सिंचाई प्रत्येक सप्ताह में होनी चाहिए। मानसून सक्रिय होने पर जुलाई से अक्टूबर तक सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। और इसके बाद अक्टूबर से फसल पकने के एक माह पूर्व तक 10–15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए जिससे खेत में नमी लगातार बनी रहे।

जल प्रबन्धन :

अदरक फसल, पानी के प्रति बहुत ही संवेदनशील है। अतः समुचित जल प्रबन्धन इसकी मुलभूत आवश्यकता है। इसलिये खेत में उपयुक्त नमी एवं वर्षा के दिनों में या अन्य समय पर खेत में जल भराव की स्थिति में उत्तम जल निकास का प्रबंध होना चाहिए। अप्रैल–मई में लगायी गयी फसल में सिंचाई की तुरन्त आवश्यकता होती है। इसके बाद मानसून आने आने तक सिंचाई प्रत्येक सप्ताह में होनी चाहिए। मानसून सक्रिय होने पर जुलाई से अक्टूबर तक सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। और इसके बाद अक्टूबर से फसल पकने के एक माह पूर्व तक 10–15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए जिससे खेत में नमी लगातार बनी रहे।

खरपतवार प्रबन्धन :

अच्छी तरह से फैले पलवार के कारण खेत में खरपतवार लगभग नहीं उगते, अगर उगे हों तो उन्हें हाथ से निकाल देना चाहिए। खरपतवार की मात्र के अनुसार लगभग दो बार दो बार निराई की जरुरत पड़ती है और साथ में ही मिटटी भी चढ़ाते रहना चाहिए। जब पौधे की उचाई 20–25 से.मी. हो जायें तो उनकी जड़ो पर मिट्टी चढाना आवश्यक होता है। अदरक में खरपतवार प्रबन्धन के लिये रसायन का प्रयोग न करें ।

रोग एवं कीट प्रबन्धन :

रोग :

1. प्रकंद मृदु विगलन

प्रकंद मृदु विगलन अदरक का सबसे अधिक हानिकारक रोग है जिसके कारण रोगग्रस्त पौधे पीले होकर मर जाते हैं। अदरक प्रकंद मृदु विगलन रोग के प्रति संवेदनशील है। यह एक कवक जनित रोग है जो पाईथीयम अफानिडरमेटम के द्वारा होता है। पी. वेक्सान्स और पी. माइरिओटाइलम के द्वारा भी यह रोग होता है।

रोग के लक्षण

रोग का प्रभाव मिट्टी में नमी की अधिकता होने पर अधिक होता है। रोग की शुरुआत तने के निचले भाग मतलब कॉलर रीजन से होती है और फिर यह ऊपर की तरफ बढ़ते हुए फैल जाता है। संक्रमित तने का निचला भाग पानी को सोख कर प्रकन्द एवं जड़ तक पहुंचाता है जिससे यह रोग प्रकन्द एवं जड़ में भी लग जाता है। इसके बाद रोग के प्रभाव से अदरक की पत्तियों के अग्र भाग में पीलापन आ जाता है और यह धीरे–धीरे पूरी पत्ती पर फैल जाता है। रोग की प्रारंभिक अवस्था में पत्तियों का मध्य भाग हरा रहता है जबकि अग्र भाग में पीलापन आ जाता है। यह पीलापन पौधे की सारी पत्तियों पर फैल जाता है जिसके कारण पतियां सूख कर गिरने लगती हैं।

नियंत्रण

रोग के नियंत्रण के लिए निम्नलिखित बातों का पालन करना चाहिए –

1. भंडारण के समय तथा बुआई से पहले बीज प्रकन्द को 0.3% मैन्कोजेब से 30 मिनट तक उपचार करना चाहिए।
2. खेत में पानी का उपयुक्त निकास होना चाहिए। ऊँची क्यारी पर अदरक की खेती आसान होती है ।
3. ट्राईकोडरमा हरजियानम के साथ नीम केक 1 किग्रा. प्रति क्यारी की दर से डालने पर इस रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।
4. रोग ग्रसित पौधे को निकाल कर नष्ट कर देना चाहिए और उसके चारों तरफ 0.3% मैन्कोजेब का छिड़काव करना चाहिए ताकि यह रोग और अधिक न फैले।
5. मक्का व सोयाबीन के साथ फसल चक्र अपनाना चाहिए।
6. यदि खेत में प्रारम्भिक लक्षण दिखते हैं तो प्रभावित पौधों एवं आसपास के पौधों को कॉपर आक्सी क्लोराइड (3 ग्राम प्रति लीटर) छिड़काव करना चाहिए ताकि रोग का फैलाव न हो।

जीवाणु म्लानी

प्रकंद मृदु विगलन से मिलता जुलता जीवाणु म्लानी रोग रालस्टोनिया सोलानसिरम बयोवाग–3 द्वारा सक्रिय मानसून के समय मिट्टी एवं बीज में उत्पन्न होता है। रोग की शुरुआत तने के निचले भाग कॉलर रीजन से होती है और फिर यह ऊपर की तरफ बढ़ते हुए फैल जाता है। सबसे पहले निचली पत्तियां पीली होने लगती हैं और बाद में धीरे–धीरे ऊपर वाली पत्तियां भी पीली हो जाती हैं। रोगग्रस्त पौधे के तने के संवहनी (वास्कुलर) तंतु में गहरे रंग की लाइन पड़ जाती हैं और प्रकन्द को दबाने पर उसमें से दूध जैसे पदार्थ का स्राव होने लगता है। इस प्रकार प्रकन्द अंत में गल जाता है।

नियंत्रण

1. भंडारण के समय तथा बुआई से पहले बीज प्रकन्द को 0.3% मैन्कोजेब से 30 मिनट तक उपचार करना चाहिए।
2. खेत में पानी का उपुक्त निकास होना चाहिए। ऊँची क्यारी पर अदरक की खेती आसान होती है ।
3. ट्राईकोडरमा हरजियानम के साथ नीम केक 1 किग्रा/क्यारी की दर से डालने पर इस रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।
4. रोग ग्रसित पौधे को निकाल कर नष्ट कर देना चाहिए और उसके चारों तरफ 0.3% मैन्कोजेब का छिड़काव करना चाहिए ताकि यह रोग और अधिक न फैले ।
5. मक्का व सोयाबीन के साथ फसल चक्र अपनाना चाहिए ।
6. यदि खेत में प्रारम्भिक लक्षण दिखते हैं तो प्रभावित पौधों एवं आसपास के पौधों को 1 प्रतिशत बोर्डेक्स मिश्रण या 0.2% कोपर ओक्सिक्लोराइड का छिड़काव करना चाहिए ।

कीट :

1. तना बेधक

तना बेधक अदरक फसल को हानि पहुंचाने वाला प्रमुख कीट है। इसका लार्वा तने को भेधकर उसकी आंतरिक कोशिकाओं को खा जाता है। पौधे के ऊपरी भाग की पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं इसका लार्वा हलके भूरे रंग का होता हैं। इसका प्रभाव मुख्यरूप से सितम्बर से अक्टूबर के बीच अधिक होता है। इसकी रोकथाम के लिए क्लोरोपाइरिफास 20 प्रतिशत इ.सी. फसल की सिचाई के समय खेत में पानी के साथ प्रयोग करना चाहिए ।

2. राइजोम शल्क

राइजोम शल्क खेत में तथा भण्डारण के दौरान प्रकंदों को हानि पहुंचाते हैं। यह प्रकन्द का रस चूस लेता है। जिससे प्रकन्द सूखकर मुरझा जाते हैं परिणामस्वरूप अंकुरण में समस्या आती है। कीट ग्रसित प्रकन्द को भंडारण न करके उसे नष्ट कर देना चाहिए। इसकी रोकथाम के लिए भी क्लोरोपाइरिफास 20% फसल की सिचाई के समय खेत में पानी के साथ प्रयोग करना चाहिए।

खुदाई :

बुआई से लगभग 8–9 महीने बाद जब पौधों की पत्तियाँ धीरे–धीरे पीली होकर सूखने लगती हैं तब अदरक की खुदाई की जाती है। खुदाई में देरी होने पर प्रकन्दों की गुणवत्ता और भंडारण क्षमता में गिरावट आती है, तथा भंडारण के दौरान प्रकन्दों का अंकुरण होने लगता है। उपयुक्त नमी होने पर ही खुदाई, कुदाली अथवा फावड़े की सहायता से करना चाहिए। बहुत सूखे और नमी वाले वातावरण में खुदाई नहीं करना चाहिए। यदि अदरक का उपयोग सब्जी के रूपमें किया जाना है तो रोपण के 6 महीने के अन्दर खुदाई करना चाहिए। प्रकन्दों को पानी से धोकर एक दिन धूप में सूखाया जाता है। यदि अदरक का उपयोग सूखी अदरक (सोंठ) के रूप में किया जाता है तो रोपण के 8 महीने के बाद खुदाई करना चाहिए और खोदी गई अदरक को 6 से 7 घन्टे तक पानी में डुबाकर रखना चाहिए। इसके बाद नारियल के रेशे या मुलायम ब्रश आदि से रगड़कर साफ करना चाहिए। धुलाई के बाद अदरक को सोडियम हाईड्रोक्लोराईड के 100 पी.पी.एम. के घोल में 10 मिनट के लिये डुबाना चाहिए जो भण्डारण के दौरान होने वाली बीमारियों से बचाता है। अदरक की परिपक्वताका समय, भूमि का प्रकार एवं प्रजातियों पर निर्भर करता है।

बीज उपयोग हेतु अदरक भूमि से खोदकर तब निकली जाती है जब पौधे का ऊपरी भाग पत्तियो सहित पूरा सूख जाता है और ये सूखी हुयी पत्तियाँ एक तरह से पलवार का भी काम करती हैं । बीज प्रकंदों को भूमि से निकाल कर कवक नाशी एवं कीट नाशियों से उपचारित करके छाया में सुखा कर एक गड्ढे में दबा कर ऊपर से बालू से ढक दिया जाता है।

उपज :

ताजे हरे अदरक के रूप में 100–150 क्विंटल उपज प्रति हेक्टर प्राप्त की जा सकती है। जो सुखाने के बाद 20–25 क्विंटल तक आ जाती है। उन्नत किस्मों के प्रयोग एवं अच्छे प्रबंधन द्वारा औसत उपज 200 क्विंटल प्रति हेक्टर तक प्राप्त की जा सकती है।

टमाटर में समेकित कीट प्रबन्धन

रणजीत कुमार[1], पुण्यव्रत सुविमलेन्दु पाण्डेय[2] एवं प्रणव पाण्डेय[1]
[1]वीर कूवंर सिंह कृषि महाविद्यालय, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, डुमरॉव, बक्सर
[2]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

कीट प्रबंधन वह प्रक्रिया है जिसमें फसल विशेष पर कीट नियंत्रण के लिए समस्त विधियों का चयन करके आवश्यकतानुसार इस प्रकार से प्रयोग में लाया जाता है कि कीटों की संख्या को कम से कम लागत में नियंत्रण करके फसल को आर्थिक क्षति से बचाया जा सके और साथ ही साथ पर्यावरण और पारस्थितिकी तंत्र पर कम से कम असर पड़े। कीट प्रबंधन के कार्यकलाप को तीन भागों में बाँटा जा सकता हैः–

(क) जिस कीट का प्रबंधन करना हो उसकी सही पहचान करके उसके विवरण, क्षति के स्वरूप, जीवन चक्र, क्षतिकारक अवस्था के बारे में जानकारी प्राप्त करना और उन जानकारी के आधार पर कीट प्रबंधन के विभिन्न विधि जैसे भौतिक, यांत्रिक, जैविक, रासायनिक एवं कृषि कृषिगत क्रियाओं का चयन करना।

(ख) कीट की उस संख्या का निर्धारण करना, जो फसल को आर्थिक रूप से नुकसान पहुँचा सकती हैं।

(ग) कीट प्रबंधन की विभिन्न विधियों को फसल की अवस्था के अनुरूप कीट के विकास क्रम के अनुसार बुद्धिमानी के साथ इस प्रकार प्रयोग किया जाये कि कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में कम से कम परिवर्तन हो तथा पर्यावरण सुरक्षित रह सके।

कीट प्रबंधन के मुख्य रूप से दो उद्देश्य हैं, पहला कीटों की संख्या को आर्थिक क्षति स्तर से कम रखना, और दूसरा पर्यावरण पारिस्थितिकी एवं कृषि पारिस्थितिकी तंत्र की सुरक्षा प्रदान करना।

प्रकृति में सामान्यतया कीट चारों ओर वातावरण से एक संतुलन बनाये रहता है। उसकी संख्या एक स्थाई संतुलन कीट की प्रजनन क्षमता एवं प्राकृतिक प्रतिरोध के बीच होता है। इस प्रतिरोध की मात्रा के घटने या बढने से कीट की संख्या में परिवर्तन आते रहते हैं। साथ ही साथ कृषिगत आधुनिक क्रियाओं से कीट को प्रर्याप्त भोजन आसानी से एक स्थान पर प्राप्त हो जाता है जिसके कारण उन्हें दूसरे स्थान पर नहीं जाना पड़ता है। इस प्रकार कीटों को कम प्राकृतिक प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है। परिणाम स्वरूप कीटों की संख्या अचानक बढ जाती है। प्रकृति द्वारा यदि इस बढी हुई संख्या का उसी अनुपात में शीघ्र नियंत्रण न किया जाये तो कीटों की संख्या क्षतिकारक स्तर तक पहुँच जाती है, जो फसल को आर्थिक क्षति पहूँचाती है और फसल की उपज में कमी आ जाती है।

आर्थिक, सामाजिक एवं भविष्य में उत्पादन की दृष्टि से कीट प्रबंधन से होने वाले जोखिम को ध्यान में रखना चाहिए। इस प्रकार की विधियां जिससे हानिकारक कीटों के परजीवी अपनानी चाहिए। जहां तक हो ऐसी परिस्थिति में कीट प्रबंधन से होने वाली हानियों को जोखिम की सघनता से तुलना करना चाहिए। परजीवी एवं परभक्षी कीटों के मरने से हानिकारक कीटों के बार–बार उभरने की संभावना रहती है जिसके नियंत्रण के लिए पुनः कीट प्रबंधन करना पड़ता है। यह संभावना रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग से होती है।

कृषि परिस्थितिकी तंत्र के अस्थिर या विकृत हो जाने पर नए–नए का पुनर्उद्भव होता है। जिसे प्रबंधित करने के लिए अतिरिक्त व्यय करना पड़ता है। कोई भी व्यवस्था जिससे पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव पड़े उससे होने वाले लाभ को समाप्त कर देता है

टमाटर फल बेधक :

टमाटर फल बेधक की सूँड़ियाँ प्रारम्भिक अवस्था में पत्तियों या फूलों को खाती है तत्पश्चात् फलों में छेद कर उसके अन्दर घुस जाती है। सूँड़ियों से ग्रसित फल या तो गिर जाते है या फफूँदी और बैक्टीरिया आदि के संक्रमण के कारण सड़ जाते हैं।

टमाटर फल बेधक का प्रकोप प्रत्येक राज्य में दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है क्योंकिः

1. नकदी फसल होने के कारण क्षेत्र विशेष के सभी किसान एक साथ टमाटर की खेती करते हैं जिसके कारण इनकी सूँड़ियों को लगातार लम्बे समय तक भोजन मिलता रहता है तथा एक ही मौसम में वे कई बार अपना जीवन चक्र पूरा कर लेती है।
2. क्षेत्र विशेष के अधिकतर किसान कोई फसल चक्र नहीं

अपनाते तथा लगातार अनेक वर्षों तक एक ही खेत में टमाटर की खेती करते रहते हैं जिसके कारण इन कीटों का प्रकोप बढ़ता जाता है।

3. टमाटर का फल तोड़ने के पश्चात् अधिकतर किसान कीट ग्रसित टमाटरों को अपने खेत के बाहर ऐसे ही फेक देते हैं जिन पर इस कीट का जीवन चक्र चलता रहता है और उससे वयस्क पतंगे निकल कर फसल पर अंडा देकर नया जीवन चक्र शुरू कर देते हैं।

4. टमाटर फल बेधक के नियन्त्रण के लिए अधिकतर किसान एक ही कीटनाशक दवा का बार–बार प्रयोग करते हैं जिसके कारण इन कीटों में प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो जाती है और वे किसी कीटनाशी रसायन से नहीं मरते।

5. अधिकतर किसान टमाटर फल बेधक के नियन्त्रण के लिए गलत दवा का प्रयोग करते है। अधिकतर दवायें भी उच्च गुणवत्ता वाली नहीं होती है तथा उनका प्रयोग भी सही मात्रा तथा सही ढ़ंग से नहीं होता।

6. अधिकतर किसान बिना किसी निगरानी के समयबद्ध तरीके से कीटनाशी रसायनो का प्रयोग करते है जिसके कारण कीट ग्रसन की सही अवस्था में कीटनाशी रसायनों का प्रयोग नहीं होता।

टमाटर फल बेधक के समेकित कीट प्रबन्धन के लिए निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना अतिआवश्यक है:

1. टमाटर की खेती कभी भी लगातार एक ही खेत में बार–बार न करें तथा अपने क्षेत्र विशेष के अनुसार ऐसा फसल चक्र अपनाएं जिसमें इस वर्ग की अन्य सब्जियों जैसे आलू, बैगन, मिर्च आदि का समावेश न हो।

2. टमाटर की खेती करने के लिए खेत का चुनाव करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखें कि खेत के आस पास बहुत बड़े क्षेत्र में टमाटर फल बेधक से ग्रसित होने वाली अन्य फसलों जैसे चना, अरहर, मक्का, भिंडी, कपास आदि की खेती न हो रही हो।

3. जिन क्षेत्रों में टमाटर फल बेधक का अत्यधिक प्रकोप होता है वहाँ पर अमेरिकन गेंदे को ट्रैप क्राप (जाल फसल) के रूप में प्रयोग करें और इसको टमाटर लगाने के कुछ पहले लगा दें। ट्रैप क्राप (जाल फसल) पर फल बेधक का प्रकोप पहले शुरू हो जायेगा और अधिकाधिक सूड़ियाँ पैदा होंगी जिन्हें कीटनाशी रसायनों का छिड़काव करके मारा जा सकता है।

4. टमाटर को फल बेधक से बचाने के लिए टमाटर के साथ अफ्रिकन गेंदे की इन्टरक्रापिंग करें। इसके लिए टमाटर की 14 लाइनों के बाद गेंदे की एक लाइन साथ साथ लगायें। चूँकि अफ्रिकन गेंदा टमाटर की तुलना में ज्यादा संवेदनशील होता है इसलिए फल बेधक के पतंगे गेंदे पर अधिक अंडा देंगे तथा सूँड़ियाँ अधिकाधिक संख्या में गेंदे पर पैदा होगी। समय समय पर गेदे पर कीटनाशी रसायन का छिड़काव कर इन सूड़ियों को मारा जा सकता है तथा टमाटर की मुख्य फसल पर कीटनाशी रसायन छिड़कने की आवश्यकता नहीं होगी।

5. कीटनाशी रसायनों का छिड़काव समयवद्ध तरीके से न करके आवश्यकतानुसार करें तथा छिड़काव का सही समय पता करने के लिए अपने खेतों में फेरोमोन ट्रैप लगायें। टमाटर फल बेधक के पतंगो की निगरानी के लिए प्रति एकड़ दो फेरोमोन ट्रैप पर्याप्त है। जब फेरोमोन ट्रैप में पतंगे फँसने लगें तो कीटनाशी रसायन का छिड़काव प्रारम्भ कर सकते हैं।

6. फसल की प्रारम्भिक अवस्था में नीम के बीज के पाउडर का सत् (एक्सट्रेक्ट) पतंगों को अंडा देने से रोकने के लिए किया जा सकता है। इसके लिए प्रति लीटर पानी में 50 ग्राम पाउडर 24 घंटे तक भिगोयें फिर पाउडर को पानी में अच्छी तरह मसल कर कपड़े से छान लें तथा घोल को टमाटर पर छिड़कें।

7. जब टमाटर फल बेधक की सूँड़ियाँ छोटी हो तो न्यूक्लियर पालिहेड्रोसिस वायरस (एन०पी०वी०) के घोल का 250 सूँड़ी समतुल्यांक प्रति हेक्टेयर, 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़का जा सकता है लेकिन ध्यान रहे इस घोल से बड़ी सूड़ियाँ ज्यादा प्रभावित नहीं होती है।

8. टमाटर फल बेधक की छोटी सूँड़ियों को मारने के लिए बैसिलस थूरिन्जिएन्सिस (बी०टी०) नामक बैक्टिरिया का भी 1.5 कि०ग्रा० बैक्टिरिया पाउडर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव किया जा सकता है लेकिन इनका भी प्रभाव बड़ी सूँड़ियों पर ज्यादा नहीं पड़ता।

9. एन०पी०वी० या बी०टी० का चुनाव करते समय इनकी गुणवत्ता को सुनिश्चित कर ले क्योंकि बाजार में उपलब्ध इनके अधिकतर उत्पाद अच्छी किस्म के नहीं

होते। सावधानी हेतु कभी भी इन उत्पादों पर पूर्ण रूप से निर्भर नहीं रहना चाहिए।

10. यदि फेरोमोन ट्रैप में प्रति 24 घंटे में 8 से अधिक वयस्क फँस रहे हो या प्रत्येक 2 पौधे पर एक सूँड़ी दिखाई दे तो कीटनाशी रसायन का प्रयोग प्रारम्भ कर दें।
11. कभी भी एक ही कीटनाशी का बार बार प्रयोग न करें तथा अलग अलग छिड़कावों में कीटनाशीयों का कुल बदलते रहें। प्रत्येक छिड़काव में दवा की सही मात्रा का प्रयोग करें तथा किसी अच्छे तथा प्रतिष्ठित उत्पादक की ही दवा प्रयोग करें भले ही वह कुछ मंहगी क्यों न हो।
12. जब टमाटर फल बेधक की सूँड़ियाँ प्रथम या द्वितीय अवस्था में होती हो तो स्पीनोसाड 45 ईसी नामक 220 मिली० दवा 500 लीटर पानी में घोलकर पौधे पर अच्छी प्रकार छिड़काव करें।
13. जब टमाटर फल बेधक की सूँड़ियाँ बड़ी हो जाय तो इन्डोक्साकार्ब 14.5 एस०सी० नामक दवा 500 मिली प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।
14. दवा का छिड़काव करने के पहले फलों को तोड़ लें तथा दवा छिड़कने के कम से कम 7–10 दिन बाद ही अगली तुड़ाई करें अन्यथा कीटनाशी रसायन का घातक विष खाने वाले पर बुरा प्रभाव डाल सकता है।
15. फलों को तोड़ने के बाद कीट ग्रसित टमाटरों को छांट कर अलग कर लें तथा उसे गहरे गड्ढ़े में डाल कर कम से कम एक फुट मिट्टी डाल दें अन्यथा फल बेधक का जीवन चक्र गड्ढ़े में पूरा होगा और वहाँ से पतंगे निकल कर खेत में फिर दुबारा जीवन चक्र शुरू कर देंगे। कीट ग्रसित टमाटरों को अन्य किसी तरीके से भी पूर्ण रूप से नष्ट किया जा सकता है।

सफेद मक्खी :

सफेद मक्खी पत्तियों के निचले सतह पर अपना मुखांग घँसाकर पौधों का रस चूसती रहती है तथा एक पौधे से दूसरे पौधे पर जा कर एक वायरस को फैलाती रहती है जिसके कारण पत्तियाँ कोढ़ी हो जाती हैं तथा पौधे की वृद्धि प्रभावित होती हैं।

1. पौधे को वायरस के संक्रमण से बचाने के लिए रोपाई करते समय कारबोफ्यूरॉन 3 सी०जी०नामक दानेदार कीटनाशी रसायन को 40 कि०ग्रा० प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए। कीटनाशी रसायन की आवश्यक मात्रा पौधे के पास रख कर सिंचाई कर दें ताकि दवा पानी में घुलकर मिट्टी में चली जाय तथा पौधे की जड़ों द्वारा उनके अंग अंग में पहुँच जाय।
2. इस कीट के प्रकोप को नियन्त्रित करने के लिए

डाइमेथोएट 30 ईसी० 990 मिली० या थियाक्लोप्रिड 500 मिली० या थियामेथोक्साम 25 डब्लू जी 200 ग्राम प्रति हेक्टेयर 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़का जा सकता है।

रेड स्पाइडर :

रेड स्पाइडर माइट पत्तियों के निचले सतह पर जाला बनाकर उसे खाते तथा नुकसान पहुँचाते रहते हैं जिसके कारण पत्ती सिकुड़ जाती है।

1. इससे फसल को बचाने के लिए मैलाथियान 50

ई०सी० 1500 मिली० या डाइफेन्थ्युरॉन 50 डब्लू पी 1250 ग्राम प्रति हेक्टेयर 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव किया जा सकता है।

उचित जल प्रबन्धन : सुनियोजित कृषि का आधार

जितेन्द्र चन्द्र चन्दोला[1], विजय कुमार[1] एवं अर्चना कुशवाहा[2]
[1]कृषि विज्ञानं केंद्र, सारण, डा. राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, बिहार
[2]कृषि महाविद्यालय, गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखण्ड

भारत का भौगोलिक क्षेत्रफल 328.73 मिलियन हैक्टर है, जिसमें कुल खेती योग्य क्षेत्रफल मात्र 143 मिलियन हैक्टर ही है। देश के भू–भाग पर बहुत से प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध है। बस चिन्तनीय विषय है निरन्तर जनसंख्या वृद्धि एवं उसके साथ प्राकृतिक संसाधनों में आती गिरावट। इन प्राकृतिक संसाधनों का स्तर कृषि में मशीनीकरण के प्रार्दुभाव से दिन प्रतिदिन घटता जा रहा है। भूमि की उपजाऊ शक्ति और उसकी गुणवत्ता को संरक्षित किये बगैर यदि सघन खेती पद्धति लगातार अपनायी जाती रही तो हरी–भरी भूमि भी रेगिस्तान में बदल सकती है। ऐसी स्थिति में उपजाऊ भूमि एक बहुत ही अमूल्य धरोहर है जिसका समुचित उपयोग एवं प्रबन्धन करना नितान्त आवश्यक हो जाता है। शहरों के इर्द–गिर्द उपजाऊ जमीन का एक बड़ा हिस्सा हर वर्श भवनों, कारखानों का निर्माण तथा अन्य सामाजिक कार्यों के चलते खेती के अयोग्य होता जा रहा है। भूक्षरण बढ़ने के साथ–साथ पानी की गुणवत्ता में ह्रास होता जा रहा है। ग्रीन हाऊस गैसें जैसे– कार्बन डाईआक्साइड, सल्फर डाईआक्साइड, नाइट्रस आक्साइड, मीथेन आदि निरन्तर बढ़ोत्तरी की तरफ अग्रसर है। इनका दुश्प्रभाव मानव, पर्यावरण, पशु–पक्षी एवं अन्य जीवों पर परोक्ष/अपरोक्ष रूप से प्रभावकारी होता जा रहा है।

लोकोक्ति 'जल ही जीवन है' अब वास्तविक रूप से चरितार्थ होने लगी है। कुछ क्षेत्रों में तो अब लोग कहने लगे हैं 'तुम मुझे जल दो बाकी मुझ पर छोड़ दो'। हमारे देश में 70 प्रतिशत कृषि वर्शा जल पर आधारित है, जहाँ वर्षा की अनिश्चितता भी बनी रहती है। इस कारण इन क्षेत्रों में फसल जीवन काल अवधि में सूखा पड़ने की स्थिति में स्थाई रूप से खाद्य सुरक्षा हेतु उपयुक्त भू–भाग के साथ–साथ फसल उत्पादन हेतु नीतिगत् व्यवस्था के साथ–साथ जल संरक्षण और उसका प्रबन्ध करने पर ही उस क्षेत्रफल से उत्पादन प्राप्त करने में सक्षम हो सकते है।

सुरक्षित कल के लिए संरक्षित करें आज जल

सफल उत्पादन के लिए अन्य कृषि निवेशों के साथ जल की आपूर्ति ही खाद्य सुरक्षा की एक मात्र कुंजी है। सभी प्रकार के कृशि निवेशों में जल उपलब्धता बहुमूल्य एवं अति आवश्यक निवेश है। अतः कृषि के साथ अन्य क्षेत्रों में भी पानी की बढ़ती माँग को देखते हुए पानी की कमी के बारे में जागरूक होकर एवं उसके संरक्षण हेतु रूप–रेखा तैयार करना अति आवश्यक हो जाता है, जिससे आगामी समय से खाद्यान्न समस्या को दूर कियश जा सके।

वैज्ञानिक शोध के आधार पर सन् 2020 में अनुमानतः पानी की उपलब्धता मात्र 75% रह जायेगी जो कि इस समय 89% के लगभग है। यह अनुमान लगाया जा रहा है कि सन् 2025 तक देश की एक तिहाई जनसंख्या को भीशण जल संकट का सामना करना पड़ सकता है।

आमतौर पर हमारे देश में वार्षिक वर्षा का कुल 85% वर्षा जुलाई–सितम्बर माह में दक्षिण–पश्चिमी मानसून से होती है। सूखा पड़ने की स्थिति में समस्त तंत्र जैसे कृषि प्रणाली, विद्युत व्यवस्था आदि प्रभावित होते हैं और वर्षा पर आधारित फसलों की उत्पादकता पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

आज चारों ओर जल संकट व्याप्त है एवंज ल संरक्षण के उपाय अपनाने पर जोर दिया जा रहा है। क्योंकि प्रति इकाई क्षेत्रफल से अधिक उत्पादन हेतु पानी की उपलब्धता आवश्यक है। वर्तमान में पानी की कमी को पूरा करने का एक मात्र उपाय जल संरक्षण ही है जिसका सदुपयोग फसल की आवश्यकतानुरूप किया जा सके। वर्शा के जल का उचित प्रबंधन एवं संरक्षण न होने के कारण बहाव द्वारा मात्र पानी ही नहीं बल्कि इसके साथ–साथ उपजाऊ मिट्टी का भी निरन्तर क्षरण होता रहता है। कृशि प्रक्षेत्रों के साथ ही अन्य प्रक्षेत्रों से पानी बहकर नश्ट होने से रोकने के लिए निरन्तर प्रयासरत् रहना होगा। खेत में खड़ी फसलें, वर्शा के द्वारा होने वाले भूक्षरण को रोकने में कवच का काम करती है।

प्रकृति द्वारा प्रदत्त पानी एक अनमोल सम्पदा है जिसका खेती में उपयोग मनुश्य प्राचीनकाल से करता चला आ रहा है। वर्तमान में पानी का उपयोग इतनी

लापरवाही से किया जाने लगा है कि इसका संतुलन दिन प्रतिदिन ही बिगड़ता चला जा रहा है। भविश्य में जल संरक्षण के अभाव में मनुश्य एवं कृशि का अस्तित्व खतरे में पड़ता नजर आ रहा है। अतः जल संरक्षण ही एक मात्र उपाय है जिसे अपनाकर भूमि की उत्पादन क्षमता को बनाये रखा जा सकता है।

मृदा प्रबन्धन द्वारा जल संरक्षण

मृदा प्रबन्धन द्वारा भूमि में नमी का संरक्षण किया जा सकता है। वर्शा की प्रत्येक बूँद को खेत के ढाल के विपरीत दिशा में सस्य क्रियाओं (जुताई, बुआई एवं सिंचाई आदि) को अपनाकर काफी हद तक संरक्षित किया जा सकता है। वर्शा जल को खेत के ढाल के लम्बवत् बनी नालियाँ व मेढ़ों के मध्य एकत्र करने से मृदा द्वारा पानी शोशित होता रहता है। जैविक या कृत्रिम पलवार के रूप रूप में जैसे– फसल–अवशेश, सूखी एवं हरी घास, प्लास्टिम आदि को खेत के ऊपरी सतह पर बिछाने से खेत की नमी के वाश्पीकरण द्वारा ह्रास में कमी के साथ ही वर्शा जल अधिकाधिक मात्रा में खेत में समावेशित किया जा सकता है, जो फसलोत्पादन हेतु लाभदायी होता है।

भूमि प्रबंधन द्वारा जल संरक्षण

भूमि के उचित प्रबंधन से काफी अच्छी मात्रा में जल को संरक्षित किया जा सकता है। दो से तीन वर्शों में खेत की एक बार गहरी जुताई करना चाहिए क्योंकि इस प्रकार की गहरी जुताई से जमीन की जल रिसाव क्षमता में वृद्धि होती है तथा जल प्रवाह में कमी आती है और फसल की उपज भी बढ़ जाती है। अध्ययन द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि जुताई करने से भूमि अधिक मात्रा में पानी शोशित करती है। मृदा कण के ढेला आकार लेने से मिट्टी की क्षरण क्षमता भी कम हो जाती है। आमतौर पर किसान ज्यादा से ज्यादा जुताई कर मिट्टी को खूब भुरभुरा बनाने में विश्वास रखते है, जिससे भूक्षणर तो बढ़ता ही है, उपलब्ध नमी भी खत्म हो जाती है। अतः पैदावार को ध्यान में रखते हुए न्यूनतम या शून्य जुताई पद्धति को अपनाना चाहिए। खेत की जुताई करते समय इस बात का विशेश ध्यान रखना चाहिए कि जुताई करने की दिशा ढलान के समकोण पर हो जिससे पानी के बहाव में अवरोध पैदा हो जिससे भूमि में पानी ज्यादा से ज्यादा मात्रा में अवशोशित होता रहे। फसल की बुवाई भी अगर ढलान के समकक्ष की दिशा में की जाती है तो पौध कतारें भी जल प्रवाह की गति को कम करती है जो भूमि में जल रिसाव को बढ़ाकर व मृदा क्षरण को कम करने में सहायक होती है।

फसल अवशेशों द्वारा जल संरक्षण

फसलों की कटाई के पश्चात् जो भी फसलों के अवशेश खेत में बचते है वे भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने और जल संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। अतः भूमि की भौतिक स्थिति को सुधारने हेतु इन अवशेशों को खेत में ही रहने दिया जाना चाहिए। अतः फसल अवशेशों को हल या हैरों आदि द्वारा मिट्टी में भली–भॉति मिला देना चाहिए।

फसल चक्र द्वारा जल संरक्षण

मिट्टी के विभिन्न परतों से पोशक तत्वों का फसलों द्वारा अवशोशण व जल का सही उपयोग, अत्यधिक लाभ, फसल सुरक्षा व वर्शा की कमी के निदान हेतु फसल चक्र अपनाया जाता है। हर वर्श एक जैसी फसलें लेने से फसल विशेश के कीट व रोग एवं खरपतवारों का प्रकोप भी बढ़ने लगता है। फसल चक्र में भूमि कटाव अवरोधी फसलों जैसे– तिलहन, दलहन एवं घास कुल का भी समावेश करना चाहिए। इस प्रकार की फसलें अधिक समय तक जल संरक्षित रखते हुए अधिक उपज देने में समर्थ होती हैं तथा जल संवर्धन भी होता रहता है। मिश्रित खेती के द्वारा दो दो से अधिक फसलों को एक साथ एक ही क्षेत्रफल में उगाने से वे भूमि के सतह पर जल प्रहाव में अवरोध बनकर भूमि व जल संरक्षण को बढ़ावा देती है।

सिंचाई की उन्नत विधियों द्वारा जल संरक्षण

1. फव्वारा/छिड़काव सिंचाई द्वाराः फव्वारा सिंचाई प्रणाली, सिंचाई की एक विधि है, जो वर्शा के समान है। पानी पाइप के माध्यम से आमतौर पर पम्पिंग द्वारा पूरे प्रक्षेत्र में वितरित किया जाता है। इस विधि द्वारा पानी स्प्रेहेड के माध्यम से हवा और पूरी मिट्टी की सतह पर छिड़का जाता है। भूमि पर गिरने वाला पानी छोटी–छोटी बूंदों में बँट जाता है। यह प्रणाली छोटे से बड़े क्षेत्रफल तथा असमतल खेतों को भी सुगमता से आच्छादित कर देता है। इस विधि द्वारा सिंचाई करने से अतिरिक्त पानी बहर कर नश्ट नहीं हो पाता है तथा कम पानी में अधिक क्षेत्रफल की सिंचाई भी आसानी से हो जाती है।

2. बूँद–बूँद (टपक) सिंचाई द्वारा जल संरक्षणः बूँद–बूँद सिंचाई पद्धति सिंचाई की उन्नत विधि है। इस विधि का उपयोग में दो का उपयोग, किस्म, खेत ढाल, जल स्रोत और किसान की दक्षता के अनुसार विभिन्न फसलों में अपनायी जा सकती है। इस विधि को अपनाने स`जल विक्षालन एवं अप्रवाह में कमी के साथ–साथ खरपतवारों की सघनता में भी कमी एवं जल संरक्षण को सुनिश्चित जा सकता है। इस पद्धति से सिंचाई हेतु पानी की मात्रा जल बूँद रूप से फसल की आवश्यकतानुरूप निर्धारित की जाती है, जिसके कारण जल दक्षता 80 से 90 प्रतिशत बनी रहती है तथा 70 प्रतिशत तक जल की बचत होती है। बूँद–बूँद सिंचाई में मृदा की बनावट के अनुसार जल के वितरण को नियोजित करके पौधों के आस–पास वायुपण्डलीय नमी को कम रखा जा सकता है, जिससे पौधों में कीट व्याधि आदि की संभावना कम रहती है। इस विधि में मिट्टी की सतह का आंशिक और नियंत्रित हिस्सा ही गीला होता है, जिसके कारण इसके माध्यम से दिया जाने वाला उर्वरकों का निच्छालन और अपवाह ने होने के कारण पोशक तत्व नश्ट नहीं होते हैं और खेत में खरपतवारों का घनत्व कम रहता है, अतः इनके उपयोग की दक्षता बढ़ जाती है। इस विधि के द्वारा जल्दी–जल्दी सिंचाई से मिट्टी में जल तनाव का प्रतिशत बहुत कम रह जाता है। जिससे पौधों की वृद्धि तथा विकास तेजही से होता है एवं इस विधि द्वारा उत्पादन में 100 प्रतिशत तक की वृद्धि सम्भव है।

3. सतही सिंचाई पद्धति द्वारा जल संरक्षणः यदि खेत को सही प्रकार से समतल किया जाये तो सतही सिंचाई के द्वारा 10–15 प्रतिशत जल की बचत की जा सकती है। सतही सिंचाई प्रणाली में खेतों को सीमान्त पट्टी (बार्डर) चैक या क्यारी और कूंड बनाकर सिंचाई की जाती है। यदि बार्डर चैक व क्यारी को उपयुक्त रूप से बनाया जाये समुचित मात्रा में पानी की बचत की जा सकती है। सतही सिंचाई में कूंड बनाकर भी पानी की बचत की जा सकती है। सतही सिंचाई में कुंड बनाकर भी पानी की बचत की जा सकती है। सतही सिंचाई में जल का एक बड़ा हिस्सा वाश्पन, रिसाव और जमीन में ज्यादा गहराई तक जाकर व्यर्थ हो जाता है। इस विधि में जल की उपयोग दक्षता 30–50 प्रतिशत तक रहती है। इसका प्रयोग अच्छी मृदा में ज्यादा उपयुक्त रहता है जिसमें जल पर नियंत्रण का प्रतिशत अपेक्षाकृत अच्छा रहता है।

पलवार द्वारा जल संरक्षण

पौधों के चारों और मिट्टी को ढकने के लिये भारतीय किसान प्राचीन समय से ही सूखी पत्तियां, पुआल, भूसा, तिनकें, सूखी घास आदि का प्रयोग कर रहे हैं। खेती में तकनीकी विकास के साथ इन विभिन्न कृशि

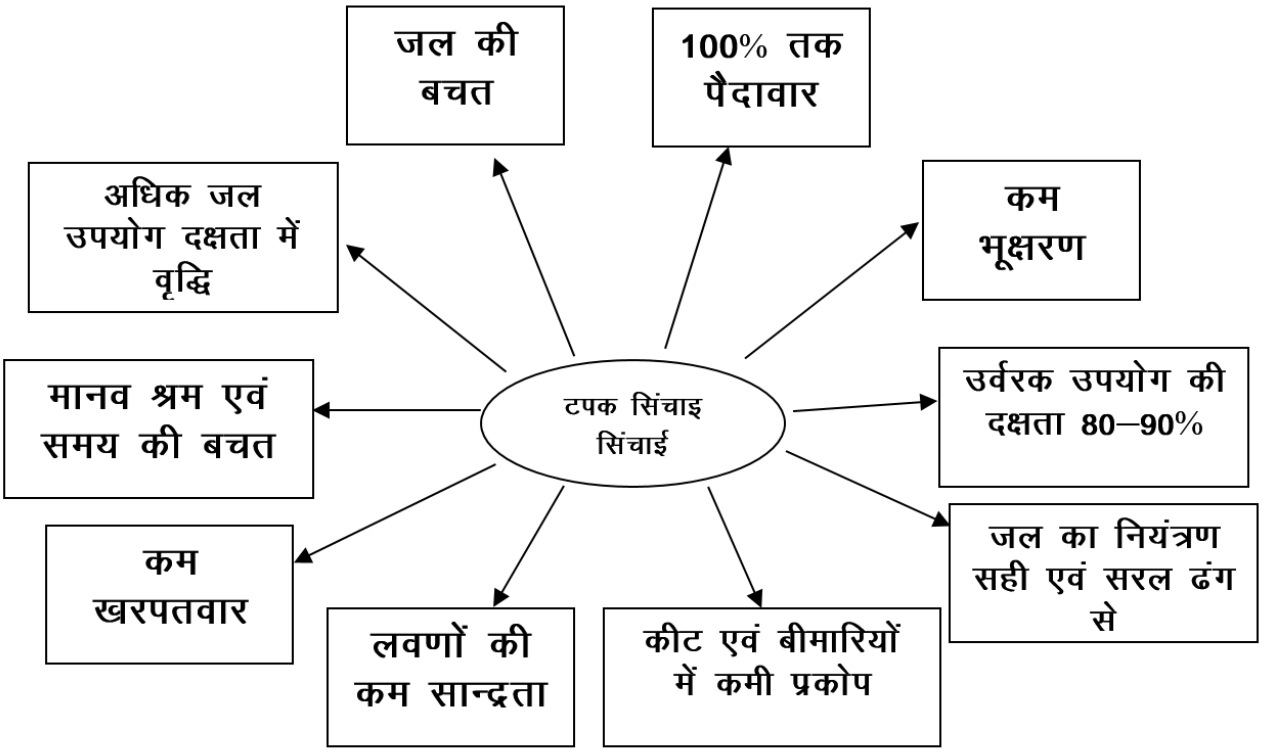

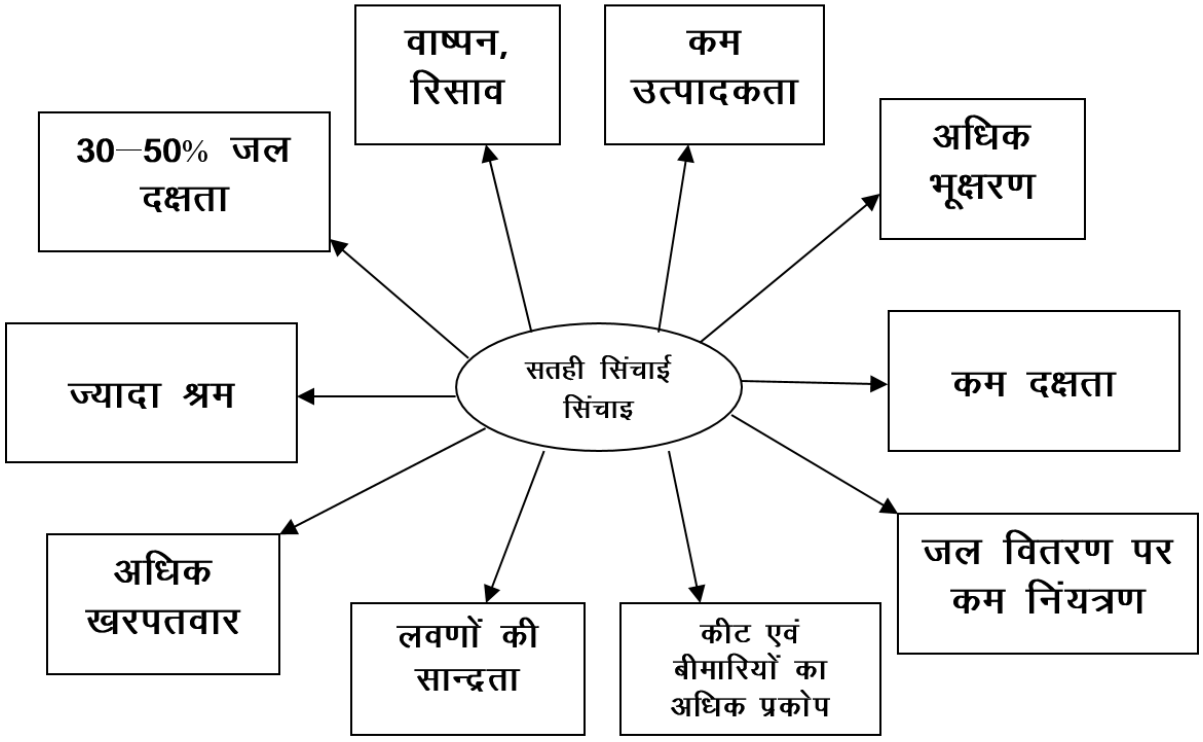

अवशिश्टों का स्थान पॉलीइथाइलीन भीट कर रहे है। इस प्रकार पौधों के चारों और मिट्टी को ढकना ही पलवार या मल्चिंग कइलाता है। फसलों में मल्चिंग करने से सिंचाई जल अधिक दिनों तक संरक्षित रहता है और अगली सिंचाई का अन्तराल बढ़ जाता है। इस तकनीक के द्वारा सिंचाई जल की लगभग 30–50 प्रतिशत बचत होती है।

भू–स्तर में लगातार होने वाली कमी को देखते हुए उपरोक्त विधियों को अपनाते हुए भविश्य के लिए जल संरक्षण अति आवश्यक हो गया है, जिससे भविश्य में होने वाली खाद्यान्नों की कमी के संकट से निपटा जा सके तथा आने वाली पीढ़ी को खाद्य सुरक्षा प्रदान की जा सकें।

मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन में दलहनी फसलों की भूमिका

प्रभात कुमार
भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

फसल उत्पादन बढ़ानें में उत्तम बीज, रासायनिक खाद, पौधा संरक्षण, आधुनिक कृषि प्रणाली एवं सिंचाई की समुचित व्यवस्था आदि की प्रमुख भूमिका है। मृदा न केवल पौधों को अवलम्बन प्रदान करती है, अपितु इनके पोषण एवं विकास के लिए उचित मात्रा में वायु, जल, तापमान एवं पोषक तत्व प्रदान करती है। विश्व की बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्यान पूर्ति के लिए मृदा का अत्यधिक दोहन किया गया। सीमित क्षेत्र एवं सीमित समय में अधिक फसलोत्पादन हेतु सघन पद्धतियों का प्रयोग एक महत्वपूर्ण विकल्प के रूप अपनाया जाना है। सघन कृषि में अत्यधिक मात्रा में रसायनों का प्रयोग होता है, जैसे उर्वरक, फफूंद नाशक, कीटनाशक एवं खरपतवार नाशक के रूप में प्रयुक्त होते हैं। इन रसायनों को दीर्घकालीन प्रयोग ने अधिक उत्पादन देने के साथ–साथ विभिन्न समस्याओं को भी जन्म दिया है, जिसमें भूमि की उर्वरा शक्ति में कमी, भूमि का जलस्तर में गिरावट एवं मृदा जल एवं पर्यावरण का प्रदूषण प्रमुख है। इसके परिणाम स्वरूप प्राकृतिक स्रोतों का ह्रास तीव्र गति से होता जा रहा है।

रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से पोषक तत्वों की कमी तो पूरी हो जाती है, परन्तु इसके साथ मृदा के भौतिक एवं जैविक गुणों का ह्रास हो जाता है। अतः मृदा में पोषक तत्वों को उचित व संतुलित मात्रा में प्रदान करने तथा मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों का विकास करने हेतु रासायनिक उर्वरकों के साथ– साथ जीवांश खादों एवं जैविक उर्वरकों का समुचित प्रयोग करना चाहिये। फसल चक्रों में दलहनी एवं हरी खाद वाली बहुउद्धेशीय फसलों जैसे– उर्द, मूंग, लोबिया, चना, मसूर, अरहर, बरसीम आदि का समावेश मृदा में पोषक तत्वों को पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराने के साथ–साथ मृदा के स्वास्थ्य को बनाये रखने में अहम योगदान देता है।

अतः पर्यावरण में स्वच्छता तथा प्राकृतिक संतुलन बनाये रखकर मृदा स्वास्थ्य, जल एवं वायु को प्रदूषित किये बिना दीर्घकालीन उत्पादन प्राप्त करने के लिए फसल चक्र में दलहनी फसलों का समावेश विभिन्न कृषि पद्धतियों में करन`से मृदा उर्वरता में वृद्धि के साथ–साथ मृदा व जल संरक्षण भी होता है।

दलहनी फसलों का मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव

सघन कृषि पद्धति में पोषक तत्वों की निकासी एवं भरपाई अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। पौधों की सम्पूर्ण वृद्धि एवं विकास के लिए मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों के स्तर को ध्यान में रखते हुए विभिन्न– विभिन्न पोषक तत्वों के स्रोतों का समायोजन इस प्रकार करना चाहिए, जिससे सभी आवश्यक पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो सके एवं मृदा स्वास्थ्य संरक्षित रहे।

दलहनी फसले एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन का महत्वपूर्ण कार्य है। दलहनी फसलें भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के लिए प्रकृति का एक उत्तम उपहार है। दलहनी फसलों का प्रबंधन समुचित रूप से किया जाय तो वह मृदा स्वास्थ्य के लिए वरदान साबित हो सकती है। दलहनी फसलें का वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को संशोषित करने की अद्भूत क्षमता होती है। इनकी जड़ें अपेक्षाकृत अधिक गहराई तक जाती हैं दलहनी फसलों के पौधे के जीवांणु राइजोबियम के साथ तकनीकी करते हैं और इन पौधों की जड़ों के अन्दर प्रवेश कर इनके गांठों का निर्माण करते हैं तथा इन गांठों में वायुमण्डल की नाइट्रोजन का स्थिरिकरण करते हैं। दलहनी फसलों तथा राइजोबियम के सहजीवी संबंध से प्रति वर्ष 70 मिलियन टन वायुमण्डली की नाइट्रोजन को अमोनियम में परिवर्तित सम्पूर्ण विश्व में होता है सघन फसल चक्र में दलहन की फसलों का समावेश किया जाता है तो यह फसलें मृदा की भौतिक, रासायनिक व जैविक दशा में सुधार कर मृदा की उपजाऊपनं को बनाये रखती है।

दलहनी फसलों का फसल चक्र में समावेश

दलहनी फसल चक्र को ''मृदा उर्वरता पोषक फसल चक्र'' कहा जाता है। दलहनी फसलों की जड़ें व पत्तियां मृदा में अपेक्षाकृत अधिक जैव पदार्थ उपलब्ध कराती है। इसलिए दो धान्य फसलों के बीच दलहनी फसलों का समावेश करना चाहिये। दलहनी फसलों का प्रयोग हरी खाद के रूप में भी किया जा सकता है।

विभिन्न दलहनी फसलों की नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने की क्षमता

फसल	नाइट्रोजन स्थिरीकरण (कि.ग्रा./हे)
अरहर	168–250
मूंग	63–342
मूंगफली	75–180
सोयाबीन	80–100
चना	90–110
मटर	50–300
मसूर	90–110
उर्द	100–140
लोबिया	90–111

सामान्य दलहनी फसलें 30–50 कि.ग्रा. ही नाइट्रोजन अग्रीम फसल को प्रदान करती है। दलहनी फसलों में राइजोबियम कल्चर के प्रयोग से नाइट्रोजन स्थिरिकरण क्षमता को और भी बढ़ाया जा सकता है।

टीकाकरण समूह	जीवाणु का नाम	फसल
मटर समूह	*राइजोबियम लेग्युमिनोसेरम*	मटर, मसूर, खेसारी
बीन समूह	*राइजोबियम फैजियोलगसेम*	बीन
अल्फा–अल्फा समूह	*राइजोबियम मोलिलिटी*	अल्फा–अल्फा
तयुपिन समूह	*राइजोबियम तयुपिन*	तयुपिन
सोयाबीन समूह	*राइजोबियम जेपोनिकम*	सोयाबीन
क्लोवर समूह	*राइजोबियम ट्राइकोडाई*	बरसीम
लोबिया समूह	*राइजोबियम स्पीसीज*	चना, मूंग, उड़द, मूंगफली

राइजोबियम जीवाणु की फसलानुसार विभिन्न प्रजातियां:

कुछ दलहनी फसलें ऐसे रासायनिक अम्ल उत्सर्जित करती है जिनसे अघुलनशील फास्फोरस घुलनशील रूप में बदल जाती है। खेत में एक ही फसल को लगातार लेते रहने से फसल विशेष के खरपतवार की संख्या लगातार वृद्धि होती रहती है जिन खेतों में खरपतवार का प्रकोप अधिक हो उन खेतों में प्रतिरोधी एवं शीघ्र बढ़ने वाली दलहनी फसलें जैसे सनई, ढैंचा, मूंग, उर्द लोबिया आदि की खरपतवारों के नियंत्रण हेतु लगाना चाहिये, क्योंकि दलहनी फसलें प्रारंभिक अवस्था में खरपतवारों की तुलना में अधिक तेजी से वृद्धि करती है और शीघ्रता से फैलकर भूमि को ढक लेती है।

अनुसंधान परिणाम से यह ज्ञात हो चुका है कि दलहनी फसलों का यदि विभिन्न फसल चक्र में समावेश किया जाये तो मृदा की भौतिक, रासायनिक, जैविक गुण व मृदा गठन में सुधार होता है। साथ ही उर्वरकों की बचत होती है। जल शोषण क्षमता में वृद्धि होती है और बहते हुए पानी को रोकने मे सक्षम होती है। जिससे जल द्वारा कटाव में कमी आती है। दलहनी फसलें की जड़ें गहराई तक जाती हैं, जो नाली का समुचित उपयोग करती है। मृदा का उचित तापमान बना रहता है जिससे सूक्ष्म जीवाणुओं की दक्षता में वृद्धि होती है और मृदा स्वरूप बना रहता है।

पादप स्वास्थ्य और खाद्य एवं पोषण सुरक्षा

रामाशीष कुमार एवं सुरभी सुमन
भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

भारत एक कृषि देश है साथ ही कृषि ही सबसे ज्यादा रोजगार देने वाला क्षेत्र भी है। भारत में कई उद्योग कृषि उत्पादन पर ही आधारित है जिस वर्ष कृषि फसलें अच्छी हो देश का अर्थतंत्र खुशनुमा रहता है और जिस वर्ष फसल कम होती है, देश का अर्थतंत्र लड़खड़ा जाता है। समय के साथ –साथ कृषि से संलग्न जमीन शहरीकरण के कारण कम हो रही है और बढ़ती हुई आबादी से फसलों के आपूर्ति के लिए दबाव बढ़ रहा है। किसान कम समय में ज्यादा उत्पादन की होड़ में रासायनिक खाद एवं कीटनाशकों के अधिक प्रयोग से पादपों को पोषण देकर उत्पादन बढ़ाकर आबादी के माँगों की आपूर्ति हो रही है। परन्तु रासायनिक एवं कीटनाशकों के उपयोग से मिट्टी पोषक तत्व, सूक्ष्म पोषक तत्व आदि की कमी होती जा रही है जिसका प्रतिकूल प्रभाव पादपों के स्वास्थ्य पर पड़ रहा है। फसलों के उत्पाउन बढ़ाने के लिए पादपों को स्वस्थ रहना अति आवश्यक है। यही कारण है कि विश्व के सभी देशों ने मिलकर वर्ष 2020 को अन्तर्राष्ट्रीय पादप स्वास्थ्य वर्ष घोषित किया है। इसका मुख्य उद्धेश्य फसलों की उपज एवं उसकी गुणवत्ता को बढ़ाना है।

उपज एवं उसके गुणवत्ता बढ़ाने के लिए पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखते हुए पादपों की सुरक्षा एवं स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर किया जाना है। किसी भी स्वस्थ फसल/पौधे से अनुमान करते हैं कि उससे ज्यादा से ज्यादा उपज मिले और वह उत्पाद गुणवत्तायुक्त हो।

पदपों को स्वस्थ रखने में जैविक खाद के लाभः

जैविक खाद जो प्राणी के कचरे या सड़े गले अवशेष पदार्थों से प्राप्त होता है। ऐसी खादों के प्रयोग से पादपों के स्वास्थ्य एवं मिट्टी के आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति के साथ–साथ उसके (मिट्टी) भौतिक रसायनिक एवं जैविक गुणों में सुधार होता है। जैविक खाद पादपों के वृद्धि विकास के लिए आवश्यक खनिज पदार्थ, पौष्टिक तत्व आदि प्रदान करता है जो मिट्टी में मौजूद सूक्ष्म जीवों के द्वारा पौधों को मिलता है जिससे पादप स्वस्थ रहता है और उत्पादन में वृद्धि होती है।

जैविक खाद के प्रयोग से न सिर्फ उत्पादन में बढोत्तरी होती है बल्कि पादप का स्वास्थ्य बरकरार रहता है और उसके उत्पाद में पोषकीय गुणवत्ता में वृद्धि होती है। जैविक खाद के प्रयोग से मिट्टी का जैविक स्तर बढ़ता है जिससे लाभकारी जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होती है और मिट्टी काफी उपजाऊं बनी रहती है जिससे पादपों का स्वास्थ्य एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।

पादपों को स्वस्थ रखने में जैव प्रौद्योगिकी का अनुदान

जैव प्रौद्योगिकी की मदद से पादपों में अनुवांशिक रूपान्तरित कर पादपों के पोषकीय गुणवत्ता, उत्पादन क्षमता, रोग प्रतिराधक क्षमता आदि को बढ़ाने में जैव प्रौद्योगिकी का अहम योगदान है। जैव प्रौद्योगिकी की मदद से अनुवांशिक परिवर्तन कर निम्नलिखित माध्यम से पादपों का स्वास्थ्य बढ़ाया जा सकता हैः–

- जलवायु परिवर्तन के कारण पादपों को प्रभावित करने वाले अजैव प्रतिबलों (सुख, ठंडा, लवण, ताप आदि) जैव प्रौद्योगिकी से निर्मित पादप में प्रतिरोधक क्षमता अधि होती है जिससे पादप प्रतिकूल परीस्थिति में स्वस्थ रहता है।
- जैव प्रौद्योगिकी के उपयोग से प्रतिरोधी फसलों का निर्माण होता है। बी.टी. एक प्रकार का जीव विष है जो एक जीवाणु जिसे *बैसीलस थुरीजिएंसीस* (Bt) कहते हैं। बी. टी. जीव विष जीन जीवाणु से क्लोनिकृत होकर पौधों से अभिव्यक्त होकर कीटों को प्रतिरोधकता पैदा करता है जिससे कीटनाशकों के उपयोग की आवश्यकता नहीं होती है और पादप स्वस्थ होते हैं।
- जैव प्रौद्योगिकी से निर्मित पादपो के खाद्य पदार्थों के

पोषकीय स्तर में वृद्धि तथा उसके उत्पाद में पौष्टिक तत्वों की प्रचुरता रहती है।

खाद्य सुरक्षा संकट

खाद्य सुरक्षा संकट को मिटाना है तो पोषण भुखमरी और सतत् कृषि को एक साथ समझना जरूरी है। भारत की जनसंख्या अभी 1.04 प्रतिशत की सालाना दर से बढ़ रही है। 2030 तक जनसंख्या 1.5 अरब तक पहुँचने का अनुमान है लेकिन इतनी बड़ी जनसंख्या का पेट भरने के लिए खाद्यान उत्पादन में अनेक समस्या है। जलवायु परिवर्तन न सिर्फ आजीविका पानी की आपूर्ति और मानव स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा कर रहा है। बल्कि खाद्य सुरक्षा के लिए भी खतरा पैदा कर रहा है। ऐसे में सवाल पैदा होता है कि क्या भारत जलवायु परिवर्तन के खतरे के बीच आने वाले समय में इतनी बड़ी जनसंख्या का पेट भरने के लिए तैयार है। भारत आज जिन चुनौतियों का सामना कर रहा है उनमें से खाद्य की चुनौती सबसे प्रमुख है। न सिर्फ भारत बल्कि अन्य विकासशील देशों के सामने भी ये चुनौतियां हैं। जैसे–जैसे चुनौतियां बढ़ रही है, हमें बड़ी तत्पारता से काम करने की जरूरत है। खाद्य एवं भू उपयोग (फूड एण्ड लैण्ड युज) की शुरूआत 2019 में की गयी है। इसका मुख्य उद्धेश्य बढ़ती आबादी के लिए पोषण, किसानों की आजीविका में सुधार, भोजन की बर्बादी को रोकना, जंगलों और खेती की सुरक्षा बनाये रखना है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम भारतीय संसद द्वारा पारित होने के उपरान्त सरकार द्वारा 10 सितम्बर, 2013 को इसे अधिसूचित कर दिया गया। इसका उद्धेश्य लोगों को सस्ती दर पर पर्याप्त मात्रा में उत्तम खाद्यान्न उपलब्ध कराना है ताकि उन्हें खाद्य एवं पोषण सुरक्षा मिले और वे सम्मान के साथ जीवन जी सके।

खाद्य सुरक्षा से पोषण सुरक्षा की ओर

खाद्य सुरक्षा का तात्पर्य, देश के हर नागरिक तक भोजन उपलब्धता को समझा जाता है जबकि खाद्य सुरक्षा नागरिको तक भोजन पहुंचाना नही वरन भोजन द्वारा उचित मात्रा में पोषण तत्वों की उपलब्धता भी है। खाद्य सुरक्षा की अवधारणा व्यक्ति के मूलभूत अधिकार को परिभाषित करता है। अपने जीवन के लिए हर किसी की निर्धारित पोषक तत्वों से परिपूर्ण भोजन की जरूरत होती है। महत्वपूर्ण यह भी है कि भोजन की जरूरत नियत समय पर पूरी हो।

मानव अधिकारों की वैश्विक घोषणा (1948) का अनुच्छेद 25(1) कहता है कि हर व्यक्ति को अपने और अपने परिवार को बेहतर जीवन स्तर बनाने, स्वास्थ्य की स्थिति प्राप्त करने का अधिकार है जिसमें भोजन, कपड़े और आवास की सुरक्षा शामिल है। खाद्य सुरक्षा ने भारत के नागरिकों के स्वास्थ्य पर गम्भीर असर डाला है। यह विडम्बनापूर्ण है कि भारत देश जहां आर्थिक उन्नति तेजी से हो रही है एवं जिसका उत्पादन 2646 लाख टन हो वो देश अपने देशवासियों के बीच भी कुपोषण की समस्या का समाधान न कर पा रहा हो। विश्व के 27 प्रतिशत कुपोषित लोग भारत में रहते हैं अभी भी भारत का 1/3 भाग गरीबी रेखा से नीचे है जो दो वक्त की रोटी के लिए मोहताज है तथा गोदामों में रखा 5 करोड़ टन अनाज बिना गरीबों तक पहुंचे हुए सड़ता है। भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर चलाये गये अनेक स्वास्थ्य कार्यक्रमों के बावजूद भारत विश्व के 40 प्रतिशत कुपोषित बच्चों का देश है जहां हर साल 25 लाख बच्चे कुपोषण के कारण मर जाते हैं। ग्लोबल हंगर इंडेक्स 2015 के अनुसार भारत कुपोषण के कारण विश्व में सर्वाधिक भूख वाले 20 देशों की श्रेणी में आता है।

खाद्य सुरक्षा एवं पोषण भारतीय नागरिकों के स्वास्थ्य से सीधा जुड़ा है तथा कृषि खाद्य सुरक्षा एवं पोषण दोनों पर असर डालता है। इस विवरण से यही तात्पर्य निकलता है कि हमारे लिए पापद कितना महत्वपूर्ण है। पादप खाद्य पदार्थों से लेकर शुद्ध ऑक्सीजनयुक्त वायु, पारिस्थितिकी संतुलन बनाने तथा कई औषधीय दवाओं का प्राकृतिक श्रोत है।

स्वच्छता: विज्ञान और प्रौद्योगिकी का योगदान

उपज्ञा साह एवं सोमेश कुमार
भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

स्वच्छता जीवन का एक महत्वपूर्ण गुण है। स्वच्छता, देवभक्ति से भी बढ़कर है। स्वच्छता का मतलब कोई गंदगी, दाग और बदबू का नहीं होना है। यह दोनों बाते ही कूड़ा–करकट , कचरे, गंदगी, कीटाणुओं और रोगाणुओं से मुक्त होने की सार स्थिति है। व्यावहारिक स्तर पर हम कह सकते हैं कि स्वच्छता का संबंध स्वच्छता और बीमारी की रोकथाम से है। इसे सौंदर्य और स्वास्थ्य में योगदान देने वाला कारक भी माना जा सकता है। इस स्वच्छता को महत्व देते हुए, हमारे प्रधानमंत्री जी ने "स्वच्छ भारत अभियान" एवं "स्वच्छ भारत मिशन" का शुभारंभ किया।

स्वच्छता के प्रकार

स्वच्छता दो प्रकार की होती हैः शारीरिक स्वच्छता और आध्यात्मिक स्वच्छता। शारीरिक स्वच्छता से तात्पर्य गंदगी और अशुद्धियों को निकालना शामिल है। शारीरिक सफाई में स्नान द्वारा शरीर की सफाई, कपड़े साफ करना और पर्यावरण से गंदगी के संग्रह को उचित माध्यम से सफाई और उन्हें उचित तरीके से निपटाना है। इस तरह से स्वच्छता मे पर्यावरण (वायु, जल और भूमि) के सभी पहलुओं को स्वच्छ और शुद्ध बनाना शामिल है। गंदगी के अंतर्ग्रहण को रोकने के लिए भोजन से पहले हाथ की सफाई और स्वच्छ खाना पकाने और खाने के बर्तनों का उपयोग करते समय स्वच्छता बनायी रखी जानी चाहिए। घर के सभी सामानों को साफ सुथरा रखकर भी हमारे घर का वातावरण स्वच्छ बनाया जाना चाहिए। शारीरिक स्वच्छता मनुष्य के साथ–साथ पर्यावरण के लिये भी स्वास्थ्य, सुरक्षा और जीवन के संदर्भ में फायदेमंद है।

एक कदम स्वच्छता की ओर

आध्यात्मिक स्वच्छता का अर्थ नैतिक संदूषण को हटाकर विश्वास और धारणाओं में शुद्धता लाना है। यह एक दिव्य गुण है जिसका अभ्यास सभी व्यक्तियों को करना चाहिए। आध्यात्मिक स्वच्छता ज्यादातर सभी धर्मों में ईश्वर और मानवता के लिये स्वयं की शुद्धता पर केंद्रित है, हालांकि शुद्धि के तरीके प्रत्येक धर्म के लिए अलग हैं।

स्वच्छता का महत्व

स्वस्थ जीवन के लिए स्वच्छता सबसे महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक है। भोजन, पानी और आश्रय जैसे जीवन की बुनियादी जरूरतों कि तरह ही हमारे जीवन में स्वच्छता का भी बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। स्वच्छता अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह बीमारियों को दूर रखकर जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाती है। व्यक्तिगत स्वच्छता के अलावा, हमारा परिवेश भी स्वच्छ होना चाहिए। यह न केवल सुंदरता और स्वस्थता को बढ़ाएगा, बल्कि इसे और अधिक आकर्षक बना देगा, जिससे देश की अर्थव्यवस्था को बढ़ाने के लिए अधिक से अधिक पर्यटकों को आकर्षित किया जा सके। स्वच्छता प्रत्येक के स्वास्थ्य और आध्यात्मिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है और देश के पर्यावरणीय विकास और जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए भी आवश्यक है। स्वच्छता सभी स्तरों पर अनुशासन को बनाए रखती है। यह परिवार, संस्थानों, शहर और देश के आत्म–सम्मान और आत्मविश्वास को बढ़ावा देता है। स्वच्छ वातावरण बेहतर बनने और प्रगति करने के लिए तीक्ष्ण मन देता है।

कुछ स्वच्छ आदतों का पालन किया जाना है –

स्वच्छता को व्यक्तिगत और सामूहिक स्तर पर भी हमारे परिवेश में बनाए रखा जा सकता है। कुछ स्वच्छ आदतें निम्नानुसार हैं

- किसी को भी गंदगी नहीं फैलाना चाहिए।
- हमें भोजन के पहले और बाद में अपने हाथ धोने चाहिए।
- हमें अपने दांतों को रोजाना कम से कम दो बार ब्रश करना चाहिए।
- भोजन को हमेशा ढककर रखना चाहिए।
- छींकते, खांसते या जम्हाई लेते समय नाक और मुंह ढकना भी अनिवार्य है।

- अगर चूहे या कीट हमारे घर में प्रवेश करते हैं, तो उनसे जल्द से जल्द छुटकारा पाना चाहिये।
- कीटाणुनाशकों का उपयोग रोजाना एक जैसा नहीं होना चाहिए क्योंकि इससे प्रतिरोधी कीटाणु पैदा हो सकते हैं।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी का योगदान

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अनुसार– ''कोई भी कचरा बेकार नहीं है और स्मार्ट तरीके से हर चीज को अक्षय ऊर्जा में बदला जा सकता है''। विज्ञान हमारे आस–पास होने वाली मौलिक प्राकृतिक घटनाये है और प्रौद्योगिकी एक ऐसा साधन है जो वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित है। सफाई के लिए उपयुक्त तकनीकों का विकास किया जाना चाहिए क्योंकि पूरे देश में भौतिक सफाई संभव नहीं है। इसरो, डीआरडीओ आदि जैसी राष्ट्रीय एजेंसियां 'स्वच्छ भारत अभियान' की सफलता में बहुत बड़ा योगदान दे रही हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी कचरे के सबसे अच्छी तरह से अपघटन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। नई तकनीक पर आधारित मशीन कचरे को इकट्ठा करने और जल निकासी को साफ करने आदि के लिए अधिक योगदान दे रहे हैं।

वैक्यूम क्लीनर – मेट्रो शहरों में सड़कों की सफाई के लिए उपयोग किया जाता है। ये क्लीनर 10 μ और 2.5 μ आकार के धूल के कणों को भी साफ कर सकते हैं, जिससे प्रदूषण में वृद्धि को रोका जा सकता है।

जैव उपचार – यह सूक्ष्मजीवों की सहायता से पर्यावरण प्रदूषकों के अपघटन की प्रक्रिया है। इस श्रेणी के और भी उदाहरण हैं, कुछ नीचे सूचीबद्ध हैं –

- *स्यूडोमोनास पुतिदा* का उपयोग जल निकायों में फैले तेल, पेट्रोल या डीजल को कम करने के लिए किया जाता है और इस प्रकार यह जल प्रदूषण को रोकता है और जलीय जीवन को भी बचाता है।
- *बेसिलस स्टैफिलोकोकस, एजैटोबैक्टर, स्यूडोमोनास* आदि जैसी सूक्ष्मजीव प्रजातियां कीटनाशकों के लिए संभावित बायोडिग्रेडेबल एजेंट हैं जो हमारी मिट्टी, पौधे, पशु और मानव स्वास्थ्य में रहते हैं।
- *सैक्रोमाइसेस क्रेविस, स्यूडोमोनस एरुगिनोसा*, माइकोबैक्टीरियम आदि सूक्ष्मजीव आदि भारी धातुओं के क्षरण में सहायक होते हैं।
- *बेसिलस सबटिलिस* का उपयोग हमारे रसोई के कचरे के अपघटन के लिए किया जाता है।

स्वदेशी जल शोधन प्रौद्योगिकी – यह तकनीक स्वच्छ पानी के लिए दबाव संचालित झिल्ली प्रक्रिया का उपयोग करती है। जल शोधन तकनीक परमाणु ऊर्जा और सौर ऊर्जा का उपयोग करती है।

पर्यावरणीय अनुकूल प्लाज्मा प्रौद्योगिकी – थर्मल प्लाज्मा प्रौद्योगिकी आदर्श रूप से ठोस अपशिष्ट उपचार के लिए अनुकूल है। प्लाज्मा प्रौद्योगिकी द्वारा खतरनाक और जहरीले यौगिकों को उच्च तापमान पर तात्विक घटकों तक तोड़ दिया जाता है। अकार्बनिक पदार्थों को प्रमाणित द्रव्यमान में बदल दिया जाता है और कार्बनिक पदार्थों को उसके घटकों में तोड़ दिया जाता है । कम तापमान पर गैसीफाइड कम हाइड्रोकार्बन गैसों को उत्पन्न करता है जब 500–600 सेल्सियस पर संचालित होता है । प्लाज्मा पाइरोलिसिस का उपयोग करके शव का निपटान भी किया जा सकता है।

मल्टीस्टेज बायोलॉजिकल ट्रीटमेंट सॉल्यूशन (एम.एस.बी.टी.) – इसे मौजूदा सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट पर लागू किया जा सकता है। एम.एस.बी.टी. के लाभ– कोई अधिशेष कार्बनिक कीचड़ नहीं है, कोई गंध की समस्या नहीं है, बिजली के उपयोग में भारी कमी परिचालन लागत को कम कर रही है, रिटर्न कीचड़ पंपिंग की कोई आवश्यकता नहीं है।

जैव–शौचालयों का उपयोग – खुले शौचालयों में जैव–शौचालयों का सबसे अच्छा तरीका है, जो खुले क्षेत्रों में संदूषण से बचाते हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के इस युग में हम अपने भारतीय रेलवे में जैव–शौचालयों का उपयोग कर रहे हैं। इसे ग्रामीण क्षेत्रों में भी बढ़ाया जाएगा।

गगन (जी.पी.एस. एडेड जियो ऑगमेंटेड नेविगेशन)– रिसीवर का उपयोग विभिन्न अधिकृत और अनधिकृत कचरा डंपिंग साइटों के स्थानों के लिए टोही के रूप में किया जाता है।

ठोस अपशिष्ट मुद्दों का मुकाबला करने के लिए राष्ट्र में कई ठोस अपशिष्ट खाद मशीनें विकसित की गई हैं। भारतीय जल निकायों के सभी प्लास्टिक घुट को हटाने के लिए दिग्गज मशीनों का विकास किया गया है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी की कुछ अतिरिक्त प्रासंगिकता–

- ठोस अपशिष्ट का उपयोग बिजली, बायोगैस बनाने के लिए किया जाता है।
- ईंटों को बनाने के लिए औद्योगिक फ्लाई ऐश का उपयोग किया जाता है।
- सड़क बनाने में प्लास्टिक का उपयोग।
- वायु प्रदूषण को कम करने के लिए इलेक्ट्रिक कारों, हाइब्रिड कारों का उपयोग।
- एन. ओ. एक्स. उत्सर्जन को कम करने के लिए उत्प्रेरक कन्वर्टर्स का व्यापक उपयोग।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय पानी के प्रदूषण के मुद्दों से निपटने के लिए जैव प्रौद्योगिकी को लागू करने की दिशा में काम कर रहा है। सीवेज और कचरे को साफ करने के लिए नई तकनीकों का परीक्षण किया जा रहा है।

स्वच्छता का प्रभाव

एक गंदा वातावरण सीखने के लिए अनुकूल नहीं होता है और यह लोगों को उन बीमारियों के लिए प्रेरित करता है जो कम उत्पादकता में होने वाली गतिविधियों को करने की उनकी क्षमता को प्रभावित करता है। एक स्वच्छ वातावरण उत्पादकता को बढ़ाएगा क्योंकि लोग एक सकारात्मक मानसिकता के साथ काम करेंगे जो तनाव मुक्त है। यह छात्रों पर भी लागू होता है। एक गंदा वातावरण लोगों को बीमारियों की ओर ले जाता है और प्रदर्शन करने की उनकी क्षमता को प्रभावित करता है जिसके परिणामस्वरूप उत्पादकता कम होती है। सामाजिक संबंधों को बनाए रखने के लिए स्वच्छता भी महत्वपूर्ण है। यदि हम व्यक्तिगत स्वच्छता बनाए रखते हैं, तो हमारा सामाजिक संबंध अच्छा होगा क्योंकि एक गंदे व्यक्ति से संपर्क करना मुश्किल है।

स्वच्छता की चुनौतियां

संसाधनों की कमी से स्वच्छता बाधित हो सकती है। यह पानी, डिटर्जेंट और अन्य सफाई एजेंटों और उपकरणों जैसे संसाधनों की सीमाओं के कारण कुछ स्थितियों में समझौता किया जाता है। एक और चुनौती श्रमशक्ति की उपलब्धता है। सबसे बड़ी बाधाओं में से एक यह है कि अधिकांश लोग जागरूक होने के लिए तैयार नहीं हैं और इस स्वच्छता अभियान में योगदान नहीं करना चाहते हैं।

सरकारी मिशन और अन्य प्रयास

2 अक्टूबर 2014 को माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने एक राष्ट्रव्यापी स्वच्छता अभियान 'स्वच्छ भारत अभियान' की शुरुआत की। इस अभियान की अवधारणा हर परिवार को स्वच्छता सुविधाएं प्रदान करना, जैसे की शौचालय, ठोस और तरल अपशिष्ट निपटान प्रणाली, ग्राम स्वच्छता, साफ और पर्याप्त पेयजल आपूर्ति(अटल अमृत जल योजना) है।

महात्मा गांधी जी की 150 वीं जयंती के अवसर पर माननीय प्रधानमंत्री मोदीजी ने लोगों से प्रतिज्ञा करने के लिए कहा – मैं कूड़ा नहीं डालूंगा और किसी दूसरे को भी ऐसा करने की अनुमति नहीं दूंगा। केंद्र सरकार द्वारा पूरे देश में ढेर सारे व्यक्तिगत और सार्वजनिक शौचालयों का निर्माण किया गया है और इसने खुले में शौच की समस्या का हल किया है।

मोबाइल ऐप्स – केंद्र सरकार ने गंदे क्षेत्रों की रिपोर्ट करने और कचरों के अलगाव, संग्रह, पुनर्चक्रण और डंपिंग से संबंधित कार्य से नागरिक और नागरिक निकायों को जिम्मेदार बनाने के लिए स्वच्छता ऐप (मोबाइल ऐप) भी लॉन्च किया है। इस प्रकार खुले में शौच को रोकने के लिए एवम् आस–पास के सार्वजनिक शौचालयों का पता लगाने के लिए मोबाइल ऐप भी विकसित किए गए हैं।

राष्ट्रीय स्वच्छता केंद्र (आर.एस.के.) – राष्ट्रीय स्वच्छता केंद्र की घोषणा पहली बार 10 अप्रैल, 2017 को प्रधानमंत्री मोदीजी ने गांधीजी के चंपारण सत्याग्रह के शताब्दी समारोह के अवसर पर की थी। प्रधानमंत्री मोदीजी ने 8 अगस्त 2020 को नई दिल्ली के राजघाट में गांधी स्मृति और दर्शन समिति में स्वच्छ भारत मिशन पर 'राष्ट्रीय स्वच्छता केंद्र–एक परस्पर संवादात्मक अनुभव केंद्र' का उद्घाटन किया । 'राष्ट्रीय स्वच्छता केंद्र' स्वच्छता से संबंधित पहलुओं के बारे में जानकारी, जागरूकता और शिक्षा प्रदान करेगा।

स्वच्छता के समर्थक

सिंगापुर के पहले प्रधानमंत्री ली कौन यू ने लगभग 50 साल पहले देश को साफ रखने के लिए अभियान शुरू किया था। इसकी वजह से यह देश

सुंदरता और अर्थव्यवस्था के मामले मे और भी बेहतर हुआ। बीमारी की दर कम है, जीवन प्रत्याशा अधिक है, पर्यटन का विकास हुआ है और सभी नागरिकों को इससे लाभ होता है।

महात्मा गांधी ने पश्चिम में गुजारे अपने दिनों से सफाई सीखते हुए, जोर देकर कहा कि एक शौचालय ड्राइंग रूम की तरह साफ होना चाहिए। उनका दृढ़ विश्वास था कि स्वच्छता अच्छे स्वास्थ्य को बढ़ावा देगा और इसलिए जीवन भर इसकी वकालत की।

निष्कर्ष

स्वच्छता हमारे जीवन के साथ–साथ राष्ट्र के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है। यह भारत के प्रत्येक नागरिक की जिम्मेदारी है कि वे स्वयं और अपने परिवेश को साफ और स्वच्छ रखें। यह अच्छे और सकारात्मक ऊर्जा को मस्तिष्क में रखेगा और बीमार होने की स्थिति को कम करेगा। स्वच्छता से संबंधित नयी तकनीकों के बारे में जागरूकता की कमी के कारण आज स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से हमारी बड़ी आबादी रोज मर रही है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी न केवल स्वच्छता की अच्छी आदतों को अपनाने में मदद करते हैं बल्कि स्वच्छ और रोग मुक्त वातावरण प्रदान करके मानव स्वास्थ्य की रक्षा और सम्वर्धन भी करते हैं। 'स्वच्छ भारत अभियान' के माध्यम से हमारे आसपास एक स्वच्छ वातावरण बनाने और विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बारे में लोगों के दिमाग को बदलने के लिए एक जन आंदोलन चल रहा है। पारिस्थितिकी तंत्र, अर्थव्यवस्था और समाज की स्थिरता प्राकृतिक संसाधन, जल और स्वच्छता से संबंधित प्रथाओं के स्थायी प्रबंधन पर निर्भर करती है जो स्वास्थ्य और पर्यावरण सुरक्षा की स्थिति को नियंत्रित करती है। स्वच्छता की अच्छी आदतों को अपनाने से देश रोग मुक्त बनेंगे, जिससे हमारे राष्ट्र की छवि अच्छी होगी।

वैज्ञानिक, शिक्षक, छात्र और मीडिया 'स्वच्छ भारत अभियान' पर जागरूकता फैलाकर स्वच्छता के प्रति दृष्टिकोण विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जो की हमारे वर्तमान और भविष्य को भी बदल सकता है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी हमारे लिए एक वरदान है क्योंकि वे शहरी से लेकर ग्रामीण क्षेत्रों में अभियान के लिए घर–घर जाकर सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। निष्कर्षतः, स्वच्छता एक बड़ी जिम्मेदारी है जिसके लिए व्यक्तिगत स्तर पर प्रतिबद्धता की आवश्यकता होती है। अंत में हम कह सकते हैं कि स्वच्छता को बनाए रखने के लिए सार्वजनिक भागीदारी महत्वपूर्ण सफलता है।

लीची के पौधों में पौध वास्तुः कितना आवश्यक एवं लाभकारी

विशाल नाथ
भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

पौध वास्तुक यानी (Plant Architecture) जिसे आम बोल–चाल की भाषा में पौधों में ढ़ाचा निर्माण कहा जाता है, फलदार पौधों में बहुत ही आवश्यक बाग प्रबंध की प्रक्रिया है। पौधों में बेहतर फलन और गुणवत्ता के लिए डालियों का चौड़े कोणों के साथ मजबूत होना, पौधे के अंद्रूनी भाग में सूर्य का प्रकार एवं वायु का संचार होना, तथा पौधे के लिए निर्धारित एवं आवंटित जगह के भीतर ही उनका फैलाव सीमित रखना अत्यन्त जरूरी होता है और इसका पूरा दारोमदार पौधे के वास्तुकला पर निर्धारित एवं आधारित होता है। प्रत्येक फलदार वृक्ष के वृद्धि एवं विकास प्रक्रिया के साथ फलन प्रवृत्ति का ज्ञान, फल गुणवत्ता एवं उत्पादकता की जरूरतें इत्यादि वास्तुकला निर्धारित करने में मददगार साबित होती हैं। अतः इन्हें समझकर ही वास्तुकला निर्धारण संभव हो सकता है।

फलदार प्रत्येक फलदार पौधे की वृद्धि, विकास एवं फलन संबधी जरूरतें ठीक उसी प्रकार से ही होती हैं जैसे किसी व्यक्ति को घर की जरूरतें एक जैसी होती हैं, चाहे वह छोटे भू–खंड या बड़े भू–खंड पर भवन निर्माण करता हैं। बेहतर तरीके से समझें कि प्रत्येक व्यक्ति के घर में बैठक कक्ष, रसोई घर, भोजन कक्ष, शयनकक्ष, प्रसाधन, भण्डार कक्ष आदि–आदि की जरूरतें होती हैं जिसे छोटे भूभाग अथवा बड़े भूभाग पर भवन निर्माण करके बनाया जाता है। बस अन्तर केवल इतना ही होता है कि बड़े भू खण्ड पर बने भवन में ये सब बड़े–बड़े जबकि छोटे भूभाग में निर्मित भवन में ये सभी अपेक्षाकृत छोटे रखे जाते हैं। इसी प्रकार लीची जैसे फलदार पौधों के वास्तुकला में पौधों को आवंटित जमीन के अनुसार उसके विभिन्न अवयवों को व्यवस्थित एवं समायोजित किया जाता है। जिस प्रकार घर बनाते समय हवा रोशनी, मजबूती, आदि को ध्यान में रखकर उसके खम्भों और कड़ियों (Beams और columns) को निर्धारित करते हैं, उसी प्रकार फलदार पौधों में ढ़ाचा बनाते समय प्रथमक, द्वितीयक, तृतीयक शाखाओं की संख्या, उनके आपसी कोणों, विभिन्न शाखाओं की लम्बाई आदि को समायोजित करते हुए पौध वास्तु–कला को अंतिम रूप दिया जाता है।

बहुवर्षीय फलदार पौधों जैसे लीची, आम आदि में शीर्श प्रभुत्व (Apical Dominance) के साथ–साथ, मध्य एवं निचले दो तिहाई क्षत्रक भाग से ही सर्वाधिक व्यवसायिक उत्पादन प्राप्त होता है और क्षत्रक के ऊपरी एक तिहाई भाग से बहुत कम उपज मिल पाती है। जबकि जड़ों द्वारा अवशोशित जल एवं पोशण का अधिकांश भाग आदतन ऊपरी भाग की तरफ उन्मुक्त रहता है क्योंकि इनमें शीर्श प्रभावी रहता है। यह बात भी विचार योग्य है कि ऊपर की ओर जाते समय अवशोशित जल एवं पोषक तत्वों का काफी हिस्सा उनके मार्ग में मौजूद बाधाओं जैसे कटे हुए ठूँठ, सूखी डाली, अवांक्षित कल्लों के कारण क्षरित हो जाता है और उसकी पूरी मात्रा विकसित हो रहे फलों तक नहीं पहुँच पाती और उनका पूर्ण उपयोग एवं लाभ नहीं मिल पाता है। यह प्रक्रियाकुछ उसी प्रकार से होता है, जैसे नहर में जाने वाले पानी की मात्रा एवं वेग का लाभ नहर के प्रारंभ वाले क्षेत्र के किसानों को अधिक तथा दूरस्थ किसानों को कम मिल पाता है। अतः यदि पौध वास्तु कला द्वारा शीर्श प्रभुत्व को कम करके अवशोषित जल और पोशक तत्वों को मध्य–निचले भाग वाले क्षत्रक के तरफ मोड़ दिया जाय, तो बेहतर उपज और गुणवत्ता मिल जाती है।

लीची और आम के पौधों में मुख्य तने और मंजर धारण करने वाली डालियों के मध्य 5–6 स्तर की शाखाएं होती हैं, जिनके माध्यम से पौधे की पूरी व्यवस्था संचालित होती है। मुख्य तने पर प्रथम स्तर की शाखाएं बनती हैं, जिन्हें प्रथमक शाखा कहा जाता है और इनकी संख्या 2 से 5 अथवा अधिक हो सकती है। प्रत्येक प्रथमक शाखापर द्वितीयक शाखाएं और द्वितीयक शाखाओं पर तृतीयक शाखायें बनती हैं। तृतीयक शाखाओं पर चतुर्थ स्तर की पतली डालियों का प्रार्दुभाव होता है और उन्हीं पर मंजर धारण करने वाली वार्शिक शाखाओं का विकास होता है। जिन्हें पंचम स्तर की शाखाओं या कल्लों के नाम से जाना जाता है। एक फलत देने वाले लीची के पौधे में वार्शिक कृन्तन द्वारा इन्हीं शाखाओं/कल्लों के विकास और उनके औज पर पौधे का फलन निर्धारित रहता है। वास्तुकला के माध्यम से जहाँ एक तरफ प्रथमक, द्वितीयक तथा तृतीयक

शाखाओं को निर्धारित किया जाता है वहीं दूसरी ओर क्षत्रक प्रबंध प्रक्रिया से पतली चतुर्थक, औजपूर्ण पंचम स्तर की शाखाओं को नियंत्रित किया जाता है जिन पर लगभग छठे स्तर पर मंजर और फूल तथा फल लगते हैं। इस प्रकार से पौध वास्तु को दो भागों में विभक्त करके क्षत्रक प्रबंध की संज्ञा दी जाती है। पौध स्थापना के पहले पांच वर्षों में मुख्य रूप से ढ़ाचा बनाया जाता है, तत्पश्चात पौधे की उम्र के साथ क्षत्रक प्रबंध का कार्य करते रहते हैं।

एक आर्दश वास्तुकला प्रक्रिया द्वारा पौधों के ढ़ाचा निर्माण का कार्य सामान्यतः द्वितीय वर्श से प्रारंभ किया जाता है, जब पौध रोपण विधि और पौध अंतराल के अनुसार मुख्य तने की ऊँचाई निर्धारित करते हुए उसके शाखा उद्भव क्षेत्र से प्रथमक शाखाओं का प्रार्दुभाव होता है। पौधों के मुख्य तने की लम्बाई, पौध रोपण अंतराल पर निर्भर करती है। यदि पौधा वर्गाकार विधि में 8X8 मीटर की दूरी पर लगाया गया है, तब जमीन से 70–80 सेमी. की ऊँचाई पर प्रथमक शाखाओं को निकलने के लिए प्रेरित करना चाहिए जिसके लिए जमीन से 1 मीटर ऊँचाई पर पौधशीर्श कृन्तन द्वारा किया जा सकता है। मुख्य तने पर 70–80 सेमी. की ऊँचाई पर चारों दिशाओं में चार डालियों को छोड़ते हुए शेष कल्लों को हटा देने से यही डालियां प्रथमक शाखा के रूप में विकसित होती हैं। प्रथमक शाखाओं के विकास के समय पौध वास्तुक के इस तथ्य का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि एक बिन्दु पर ऊपर के तरफ केवल 180°का ही कोण (सरल कोण) बन सकता है और पौधों में यदि 42°से अधिक कोण वाली शाखाओं का विकास होता है तब ही चौड़े क्राच कोण वाली शाखाओं को विकसित किया जा सकता है। अतः वर्गाकार विधि में लगे हुए पौधों में चार प्रथमक शाखाओं वाला ढ़ाचा उपयुक्त माना गया है। यहाँ पर यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है, कि बहुवर्षीय फल वृक्ष जैसे कि लीची का पौधा 70–80 वर्षों तक फल देता है और कालान्तर में प्रथमक शाखाओं की मोटाई बढ़ने से उनके बीच के आपसी कोण 42° से कम हो सकते हैं। अतः 2–3 प्रथमक शाखाओं पर भी ढ़ाचा बनाने का प्रयास किया जा सकता है जिससे आगे चलकर न्यून क्राच कोण की समस्या उत्पन्न न हो सके। वर्गाकार विधि से लगाये गये पौधे के मुख्य तने के साथ चार प्रथमक शाखाओं वाले पौध वास्तु–कला में मुख्य तने के सापेक्ष एक शाखा के साथ सैद्धान्तिक रूप से 90° का कोण बनना चाहिए, परन्तु प्रथमक शाखा के उर्ध्वाधर विकास को ध्यान में रखते हुए 110–120° का वृहत कोण श्रेयष्कर होता है। ऐसा ढ़ाचा जहाँ एक ओर वायु के दबाव और फलन के कारण शाखा को फटने से बचाता है, वहीं दूसरी ओर बागीचे में नियमित कर्षण क्रिया करने में कोई बाधा नहीं पैदा करता।

मुख्य तने पर प्रथमक शाखाओं की संख्या के निर्धारण के पश्चात उनकी लम्बाई का निर्णय एक महत्वपूर्ण एवं निर्णायक बिन्दु होता है जो पौधे के क्षत्रक की दिशा का सूत्रधार होता है। यदि पौधे 8X8 मीटर दूरी पर लगाये गये हैं, तो प्रत्येक पौधे को बढ़ने के लिए एक तरफ 4 मीटर की अधिकतम् सीमा रहती है जिसमें से दो पौधों या कतारों के बीच 0.5 मीटर गैलरी या गली के रूप में स्थान रिक्त रखते हुए पौधे को एक तरफ 3.5 मीटर ही बढ़ा सकते हैं। इसमें से यदि नियमानुसार 60 प्रतिशत क्षेत्र ढ़ाचा (2.1 मीटर) और 40 प्रतिशत क्षत्रक (1.4 मीटर पतली डालियों, पत्तियों, कल्लों, मंजर आदि के लिए) के लिए रखते है तो लगभग 2 मीटर ढ़ाचा और 1.5 मीटर क्षत्रक का क्षेत्रफल आता है। अतः प्रथमक, द्वितीयक और तृतीयक तथा कभी–कभी चतुर्थक शाखा का कुछ भाग 2 मीटर के अर्न्तगत सीमित रखना पड़ता है। इन शाखाओं की लम्बाई आपसी सामान्जस्य तथा मौजूद वायवीय दशाओं पर आधारित रखें, तो बेहतर परिणाम मिलता है। सैद्धान्तिक तौर पर प्रत्येक शाखा को 60–70 सेमी. लम्बाई की आजादी है। परन्तु जिन दशाओं में पौधे उगाये जा रहे हैं उनके अनुरूप इनमें आपसी लम्बाई में 20–25 प्रतिशत तक का उतार–चढ़ाव संभव रहता है परन्तु ऐसा करते समय डालियों की मजबूती, उनकी आँडा–तिरछा होना और उनके आपसी कोण का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सामान्य तौर पर प्रत्येक प्रथमक शाखा पर 2–3 द्वितीयक और प्रत्येक द्वितीयक शाखा पर 2–3 तृतीयक शाखाओं को विकसित करने पर पेड़ के भीतर सूर्य की रोशनी और वायु संचार सामान्य स्तर पर रहता है तथा पौधों के केन्द्रक भाग को खुला रहने के कारण क्षत्रक के अन्द्रूनी भाग में भी फलत होती है और उत्पादन में डेढ़ से दो गुना की वृद्धि होती है।

इस प्रकार यदि पौध वास्तु कला लीची के

वर्गाकार पद्धति में लगे पौधों में किया जाय तो अच्छा उत्पादन और पौधों का स्वास्थ्य बरकरार रखने में मदद मिलती है, परन्तु सभी बागवानों द्वारा, सभी पौधों में ऐसा कर पाना संभव नहीं हो पाता। अतः किसानों को ऐसी सलाह दी जाती है कि ढ़ाचा निर्माण या पौध वास्तु कला के संबंध में निम्न बातों का ध्यान अवश्य रखें।

1. पौधे के मुख्य तने के पास खड़े होकर ऊपर देखें तो आसमान साफ तौर पर दिखाई देना चाहिए ।
2. पौधे के मुख्य तने के पास एक सीधी डण्डी या बांस खड़ा करने पर कोई प्रथमक या द्वितीयक या तृतीयक शाखा उसे क्रास न करे।
3. मुख्य तने से 2 मीटर की दूरी में गोलाई में घूम कर ऊपर की तरफ शाखाओं की गणना करने पर उनकी संख्या 8–12 के बीच होनी चाहिए।
4. ऊपर से पौधे को देखने पर पूरा क्षत्रक चपटा और गोल होना चाहिए न कि शंक्वाकार और बेतरतीब।

यद्यपि कि उपरोक्त वर्णित बिन्दुओं का ध्यान रखकर लीची के पौधों में उचित वास्तु कला का निर्धारण किया जा सकता है परन्तु यदि यह कार्य प्रशिक्षित व्यक्तियों या अनुभवी सलाहकारों के देखरेख एवं परामर्श से किया जाय तो बेहतर परिणाम मिलता है।

अतः लीची के पौधों में वास्तुकला एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं आवश्यक प्रक्रिया है जिसे पौध स्थापना के बाद 4–5 वर्षों तक समझ बूझ और चतुराई से करने की जरूरत होती है। यदि पौधों को उचित तरीके से विकसित किया जाय तो उनसे अनवरत अच्छा एवं गुणवत्तापूर्ण उत्पादन मिलता रहता है।

कृषि और कानून

शालिनी शुक्ला
रानी लक्ष्मीबाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी

अक्सर ही यह बातें सुनने को मिलती रहती हैं कि हमारे अन्नदाता और अन्नपूर्णा के हित मे ंनए कानून बनाये गए हैं, पर उनसे लाभान्वित कृषकों की संख्या नगण्य सही ही प्रतीत होती है। अभी हाल ही में तीन नए विधेयक संसद के दोनों सदनों में पास हुए व इन पर माननीय राष्ट्रपति जी ने भी हस्ताक्षर किए परन्तु इनकी सही समझ न होने के कारण कृषक बन्धुओं का विरोध इस कोरोना काल में भी जमक र देखना पडत्र रहा है। मैं पूछती हूँ कि आखिर कमी कहाँ कर जाती है, इतने कानून बनते हैं, इतनी सुविधायें दी जाती हैं पर असल में तो कुछ दिखता हीं नहीं ? तो क्या ये कृषि संस्थानों में होने वाली शोध का भी कोई महत्व नहीं है, या फिर इन नए कानूनों में ही कमी है?

दरअसल, जहाँ तक मेरी समझ है उसके लिहाज से तो मुझे कमी अपने प्रसार विभाग और पक्षपाती मीडिया में नजर आती है। यदि गौर करें तो पाएंगे कि वास्तव में हमारा प्रसार विभाग जितनी मेहनत से किसान बन्धुओं तक अपनी बात रखता है उसका आंशिक भी उन्हें परिणाम नहीं दिखता औश्र यह सब मैं भी अपनी आँखों देखी ही कह रही हूँ। पक्षपाती मीडिया की बात करें तो आजकल एकतरफा तस्वीर ही हमसे साझा की जाती है और ज्यादातर नकारात्क। अगर मैं, कृषि कानूनों की ही बात करूँ तो बड़े बड़े चैनेल भी सिर्फ नकारात्क पक्ष ही दिखा रहे हैं जो कि हमारे युवाओं को गुमराह कर रहा है।

कई विशेषज्ञों ने बिहार का हवाला दे कर कृषि क्षेत्र में निजीकरण व कॉन्ट्रेक्ट फार्मिंग को असफल ठहराय है पर मेरा उनसे तर्क सिर्फ इतना ही है कि क्या वे सफल उदाहरणों को विस्मित कर चुके है? जब कोका कोला कपनी भारत आई थी तब यहाँ चीनी की गुणवत्ता अच्छी नहीं थी परन्तु कंपनी ने किसानों के साथ कांट्रेक्ट फार्मिंग शुरू की जिसके परिणाम स्वरूप उच्च उत्पादकता वाली वैरायटी, सही मात्रा में खाद, पानी व सही तरीके से कीटों का समाधान आदि ज्ञात हुआ और आज का समय वह है जब हम विश्व में गन्ना उत्पादन में दूसर स्थान पर हैं।

ऐसे ही अन्य भी कई दृष्टांत है जो हमें इन कानूनों का सकारात्मक पक्ष देखने को प्रेरित करते है। मैं यह नहीं कहती कि मैं किसी पार्टी के पक्ष में अपना समर्थन दे रही हूँ अपितु मेरा वक्तव्य पूर्णतः मेरी स्वयं की समझ का है। एक कृषि विद्यार्थी होने के नाते मेरी समझ यही कहती है कि हमें यदि वास्तव में लैब टू लैंड प्रोग्राम को आज के परिपेक्ष्य में सफल बनाना है, तो कृषक बन्धुओं से सामंजस्य बिठाना होगा, सिर्फ किसी कार्यक्रम में उन्हें सिया देने से कोई असर नहीं होता। यदि कोई उनके साथ कदम मिला कर चल सकें, उन्हें सही तकनीक सही वक्त पर बता सके, उच्च तकनीकों को मुहैया करवा सके तो ही किसानों को लाभ हो सकता है और यदि किसी देश के किसान खुश है तो निश्चय ही वहाँ की आम जनता भी सुखी रहेगी। अंततः जहाँ तक मेरा मानना है तो कोई भी देश अपने अन्नदाता व अन्नपूर्णा के विरोध में कानून नहीं पारित कर सकता और वह तब जब कोरोना जैसी विपदा में भी सिर्फ कृषि क्षेत्र ने ही उम्मीद की किरण रखी थी। हो सकता है कि इसे समझने में ही कुछ कमी रह गई हो और इसके लिये जरूरी यही है कि सत्ताधारी लोग इस वक्त को देखते हुए, कृषि के प्रसार विभाग एवं मीडिया को इस संदर्भ में उचित जानकारी हमारे कृषकों तक पहुँचानी चाहिए जिससे यह कार्य सुचारू रूप से पूर्ण हो सके।

वास्तव में एक किसान को ही पता होता है। उसे किन परिस्थितियों से हो कर गुजरतना पड़ता है देशवासियों के भरण पोषण के लिये और इसे ही सुगम बनाने हेतु बनाये जाते हैं कानून। बस जरूरत है तो इनहें सही पक्ष से समझने की।

स्वाद और सेहत का संगमः शहद

मिथिलेश तिवारी, प्रियंका सिंह, राजीव रंजन राय एवं ए.के. सिंह
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

शहद शुगर, ऐंजाइम्स, मिनरल्स, विटामिन और अमीनो ऐसिड्स का मिश्रण होता है, जिसमें ऐंटीबैक्टीरिल, ऐंटीफंगल और ऐंटी–आक्सीडैंट्स गुण पाए जाते है। इसे एक प्राकृतिक स्विटनर माना जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने शहद को शामक या तापहर के रूप में शामिल किया है। इसका स्वाद अच्छा होता है, तथा इसके कई स्वास्थ्य लाभ भी है।

शहद के सेवन के फायदे इस प्रकार हैः

संक्रमण से बचाव

शहद इम्यून सिस्टम को बूस्ट करता है व संक्रमण से बचाता है। यह श्वसन मार्ग के संक्रमण का उपचार करता है। गले की खराश में यह काफी कारगर है। यह न केवल गले को आराम देता है, बल्कि कुछ निश्चित बैक्टीरिया को भी मार देता है जिनके कारण संक्रमण होता है। शहद में ऐंटीसैपटिक गुण भी होते है, जो बैक्टीरिया के विकास को रोककर संक्रमण से बचाने में सहायता करते है। यह कटने और जलने पर नैचुरल क्योर के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

शरीर में ऊर्जा का स्तर बढ़ाए

शहद कार्बोहाइड्रेट का एक बहुत अच्छा प्राकृतिक स्त्रोत है। अगर आप थकान से पीड़ित है तब शहद आपकी बहुत सहायता कर सकता है। शहद में मौजूद ग्लूकोज शरीर में आसानी से अवशोषित हो जाता है और तुरंत एनर्जी को बूस्ट करता है। शुगर की तुलना में शहद रक्त में शुगर के स्तर को लगातार स्थिर रखता है।

मौनिंग सिकनैस से बचाव

आप सुबह उठें और आप के शरीर में ऊर्जा की कमी महसूस हो, तो ऐनर्जी ड्रिक्स का सेवन न करें। इस के स्थान पर टोस्ट को शहद के साथ खाएं या अपने कौर्नफलैक्स में शहद डाल लें। यह आपको तरोताजा कर ऊर्जा से भर देगा।

कोलस्ट्रौल के स्तर को नियंत्रित करने में शहद का सेवन ठीक रहता है। यह अच्छे कोलस्ट्रौल का स्तर बढ़ाता है और बुरे कोलस्ट्रौल को कम करता है।

वजन घटने में सहायक

शहद मोटापे को नियंत्रित करने में भी प्रमुख भूमिका निभाता है यह मैटाबोलिज्म को तेज करता है। इससे शरीर में अधिक वसा जलाने में सहायता मिलती है। सुबह एक गिलास गुनगुने पानी में एक चम्मच शहद डालकर पीने से वजन नियंत्रित करने में सहायता मिलती है।

हीमोग्लोबिन का स्तर बढ़ाए

नियमित रूप से शहद का सेवन शरीर में कैल्सियम का अवशोषण और हीमोग्लोबिन की मात्रा को बढ़ाता है। इस प्रकार से ऐनीमिया से लड़ने में सहायता करता है।

यह न करें

घी और शहद को कभी मिक्स करके न खांए, क्योंकि शरीर में इनकी विपरीत प्रतिक्रियाएं होती है। शहद शरीर को सुखाता है और गरम करता है। जबकि घी शरीर को ठंडा करता है और नमी प्रदान करता है।

हमेशा कच्चा और बिना पका हुआ शहद खाएं। शहद को बेक करते या गरम करने से यह एक चिपचिपें पदार्थ में बदल जाता है, जो शरीर के चैनलों को ब्लौक कर सकता है और विष उत्पन्न करता है।

शहद को कभी भी चाय में डालकर नहीं पीना चाहिए।

ऐसे करें सेवन

शहद का सेवन करें, लेकिन संभलकर। शहद में 53 प्रतिशत फ्रक्टोस होता है। एक चम्मच में 4 ग्राम फ्रक्टोस होता है। अगर हम अधिक मात्रा में शहद खाएंगे तो हमारे शरीर में इंसुलिन का संतुलन गड़बड़ा जाएगा। एक दिन में 25 ग्राम से कम फ्रक्टोस खाना चाहिए। डायबिटीज वाले लोगों को या अधिक वजन वाले लोगों को, शहद और भी कम मात्रा में खाना चाहिए।

भारतीय पारम्परिक ज्ञान एवं इसमे पीढ़ी दर पीढ़ी शोधकार्यों की भूमिका

ऋचा रानी
मध्य प्रदेश इंस्टीट्यूट ऑफ हॉस्पिटलिटी ट्रैवल एंड टुरिज्म स्टडीज, भोपाल

व्यापक अर्थ में अनुसंधान का अर्थ किसी भी क्षेत्र में ज्ञान की खोज करना या विविध जानकारियों को हासिल करना है। वैज्ञानिक अनुसंधान के द्वारा वैज्ञानिक विधि के माध्यम से हम जिज्ञासाओं को समाधान करने की कोशिश करते हैं। मनुष्य के जिज्ञासा प्रवृति के कारण ही नयी वस्तुओं की खोज पुरानी विषयों और सिद्धांतों को नया आयाम देना, उनका पुनः परीक्षण करना तथा नए नए तथ्यों को सार्थक सिद्ध करना, ये सभी शोध ही कहलाते हैं। शोध प्रक्रिया के दौरान तथ्यों का संकलण कर सूक्ष्मग्राही एवं विवेकात्मक बुद्धि द्वारा अवलोकन एवं विश्लेषण कर नए तथ्यों को सत्यापित एवं नए सिद्धांतों को प्रतिपादित किया जाता है। शोधार्थी अपने विषय क्षेत्र में विशेषज्ञता हासिल कर समाज के उत्थान के लिए समाज में मौजूद परिस्थितियों पर शोधकर नया सिद्धान्त प्रतिपादित करने की कोशिश करते हैं। वे समाज में मौजूद समस्याओं का समाधान वैज्ञानिक पद्धति द्वारा करने का प्रयत्न करते हैं ।

भारतीय पारम्परिक ज्ञान एवं शोध

भारतीय ज्ञान एवं परम्परा भी हमेशा से शोध का एक मुख्य विषय रहा है। शोध के माध्यम से ही इस परम्परा की महत्ता को विश्व के जनमानस को परिचित किया जाता रहा है। भारतीय ज्ञान एवं परम्परा केवल जड़ ही नहीं बल्कि, सतत् प्रवाहमान है। भारतीय सांस्कृतिक सभ्यता भौतिक ज्ञान परम्पराओं को विशेष महत्व नहीं देती, बल्कि यह आदिवैदिक आध्यात्मिक प्रवृतियों से जुड़ी है, जिसमे धर्म, अर्थ,काम और मोक्ष सम्मिलित है। किसी भी सभ्यता और संस्कृति का उत्थान और पतन केवल वहाँ की आर्थिक, राजनीतिक स्थिति पर ही निर्भर नहीं करता, बल्कि वहाँ की पुरातन पारम्परिक ज्ञान पर भी निर्भर है। भारतीय संस्कृति में हमेशा ही अपनी पारम्परिक ज्ञान को समृद्ध करने की भूमिका हमारे ऋषि मुनियों द्वारा रचित वेद, उपनिषद और पुराण में उल्लिखित ज्ञान है। पारम्परिक शब्द आधुनिक समय में अविकसित या अप्रचलित रूप को समझा जा रहा है। किन्तु कई पारम्परिक ज्ञान क्षेत्रीय स्थिति और आवश्यकता के अनुकूल है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी पैतृक संपत्ति के रूप में जनसाधारणों के माध्यम से चला आ रहा है। पर आधुनिक दौर में उन पारम्परिक ज्ञान को विज्ञान एवं प्रोद्यौगिकी के आधार पर निम्न आँका जा रहा है। उसकी महत्ता को एक संकीर्णता के रूप में प्रदर्शित किया जा रहा है। हमारे पारम्परिक ज्ञान को विज्ञान विरोधी माया तथा प्रोद्योगिकी विरोधी रूढ़िवादिता कहा गया है। वैश्विक व्यवसायिकीकरण के कारण भारत का पारम्परिक ज्ञान धरातल में जा रहा है या यूँ कहें तो आधुनिक ज्ञान ने इसकी महत्ता को आच्छादित कर रखा है। क्षेत्रीय सामुदायिक ज्ञान, विज्ञान, प्रोद्यौगिकी, भूमि की शिल्पकला को विनष्ट और दुर्बल कर दिया गया है। अवसरवदियों ने अपनी आवश्यकता अनुसार इसका दोहन तो खूब किया है, लेकिन इसे महत्व कदापि नहीं दिया। और आज भी इनके द्वारा हमारी बौद्धिक सम्पदा को अपना बताकर पैटेंट करने की कोशिश किया जा रहा है।

प्राचीन भारतीय ज्ञानः एक धरोहर

पारम्परिक ज्ञान प्रणाली कोई कुछ वर्षों में विकसित नहीं की जा सकती, इसके लिए हजारों वर्षों से हमारे पूर्वजों ने अपने अनुभवों के साथ जिया है तथा अपने अनुभव यात्रा से बहुत कुछ सीखा है। भारतीय इतिहास इस बात का प्रमाण है कि मध्य काल में जन्में आर्यभट्ट, वाराहमिहिर, भाष्कराचार्य, लीलावती आदि अनेक वैज्ञानिक हुए जिन्होंने अपने ज्ञान और अनुभव से हमें और पूरे विश्व को लाभान्वित किया । इन वैज्ञानिकों ने खगोलशास्त्र और ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से लेकर अनेक उल्लेखनीय शोध किए। श्रुसुत ने शल्य चिकित्सा में, चरक ने आयुर्वेद में, नागार्जुन ने रसायनशास्त्र में,विश्वकर्मा ने अभियांत्रिकी में, सुलोचन ने वास्तुशास्त्र में अपने शोध के आधार पर अनेक सिद्धांतों को प्रतिपादित किया। उनके ज्ञान को अनेक सभ्यताओं ने अपनाया और अपने ग्रन्थों में सम्मिलित कर अपनी कार्यप्रणाली को विकसित किया। हमारी इन पारम्परिक ज्ञान को अपना कर अन्य देशों ने जहाँ एक तरफ तरक्की पायी, वहीं दूसरी तरफ हम संकीर्णता में फँस कर इन्हें रूढ़िवादी करार दे दिया। व्यवसाय का अवसर पाने के उद्देश्य से

कुछ कुटिल लोगों ने भी इन पारंपरिक शोध ज्ञान को विकसित होने से वंचित रखा, ताकि आम जनमानस तक सही ज्ञान न पहुँच सके।

अप्रभावी समायोजन

काफी समय अंतराल के बाद हमारे बीच के ही कुछ जागरूक एवं जिज्ञासु विद्वानों ने अपनी अतीत से हमें परिचित कराया। उनके ही प्रयासों से आज भी हमारा पारम्परिक ज्ञान जीवित रह पाया है और विकसित किया जा रहा है। इन पारम्परिक ज्ञान को धरोहर के रूप में सँजोने एवं सुरक्षित रखने वाले हमारे भारतीय जनजाति हैं, जिन्हें हम आदिवासी या वनवासी की संज्ञा भी देते हैं। यह आज भी उनके दैनिक क्रियाकलापों में देखने को मिलता है, जो कहीं भी लिपिबद्ध नहीं है। वे अपने इस ज्ञान को पीढ़ी दर पीढ़ी आनुवंसिक सम्पदा के रूप में देते आ रहे हैं। उनके पारम्परिक ज्ञान में उनके द्वारा अपनायी गई कृषि पद्धति एवं उपकरण हस्तकला शिल्पकला नृत्यसंगीत वाद्ययंत्र चित्रकला आखेट करने के तरीके पशुपालन करने की विधियाँ एवं वनस्पतियों का औषधीय ज्ञान सम्मिलित है। उनका वानिकी ज्ञान इतना समृद्ध है की वे बहुत ही सारे असाध्य रोगों का उपचार स्वयं ही कर लेते हैं। जैसे रक्तचाप और हृदय रोगों के लिए अर्जुन की छाल, किडनी संबन्धित रोगों के लिए अश्वगंधा और अजवाइन, पथरी के लिए आपामाला बेल, भूमिआंवला और चिरचटा की जड़ों का इस्तेमाल करते आ रहे हैं। उनके इस ज्ञान से अब शोध के द्वारा बृहद समाज को लाभान्वित करने की कोशिश की जा रही है।

जहाँ तक देखा गया है, समाज में महिलाओं की भूमिका भी इन पारम्परिक ज्ञान को पीढ़ी दर पीढ़ी ले जाने में अतिमहत्वपूर्ण रही हैं। घरों में इस्तेमाल होने वाली खाद्य वस्तुओं को दवा के रूप में अपने बच्चों को ऋतु के अनुसार देना इन्हें बखूबी आता है। मसालों के रूप में कई वस्तुएँ हमारे जीवन में दैनिक उपयोग में लायी जाने वाली औषधि हैं, जिन्हे हम बचपन से खाते आ रहे हैं। लेकिन हमें तो शायद इसका पता भी नहीं चल पाया है। शोध के आधार पर ही हम जान सके है कि खान पान मे उपयोग आने वाले मसाले भी हमारे जीवन में कितना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं ।

भारतीय ज्ञान और इसका व्यवसायीकरण

राजीव मल्होत्रा के अनुसार आहार के साथ साथ, योग भी हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग है, जिसका ज्ञान हमें विरासत में प्राप्त हुआ है। परंतु हमारे पूर्वजों ने अपने इस पारम्परिक ज्ञान को कभी भी शोध के द्वारा सत्यापित तथा स्थापित करने की कोशिश नहीं की। और इसका परिणाम ये रहा की अब हमें किसी भी इलाज के लिए अन्य चिकित्सा पद्धति पर निर्भर होना पड़ रहा है। विदेशों में हमारे ही देश से सीख कर गए कुछ योग गुरुओं ने इस योग ज्ञान का काफी व्यवसायीकरण कर दिया है। यहाँ तक की कुछ योगकलाओं को पैटेंट करने की भी भरसक प्रयत्न इनके द्वारा किया गया। वह तो भला हो कि समय रहते हमारे देश के आयुष मंत्रालय को इनकी सूचना मिल गयी और ऐसे सारे प्रयास निष्फल कर दिये गए। अब हमारे देश में आयुष मंत्रालय द्वारा अनुमोदित कई अनुसंधान केंद्र इस शोध कार्य में संलग्न हैं। वर्तमान में हरिद्वार स्थित स्वामी रामदेव द्वारा संचालित पतंजलि योगपीठ ने इस कार्य में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हमारे प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी के प्रयासों से ही 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में मान्यता मिली और आज पूरा विश्व इसका दिल से अनुरकण कर रहा है।

पारंपरिक ज्ञान एवं शोध की भूमिका

पारम्परिक ज्ञान किसी भी विरासत का मत्वपूर्ण अंग है। यह जीविका के साथ साथ जीवन का आधार है। आधुनिक समय में इस ज्ञान कि मौलिकता विलुप्त हो रही है, जिसे जीवित रखने एवं पुनर्जीवित करने के लिए शोध कार्यों को करना अतिआवश्यक है। जनमानस के मस्तिष्क में इस ज्ञान से जुड़ी भ्रामकता को समाप्त करने एवं जागरूकता का विकास करने के लिए शोध अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है। आज चिंता का विषय है की यह पारम्परिक ज्ञान मूल रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित नहीं हो प रहा है। इसका मूल कारण शहरीकरण है, जिस कारण नवयुवक अपने मूल स्थान और पारम्परिक मूल कार्यों को छोड़ कर पलायन कर रहे हैं तथा वे अपना पुराना उद्योग भी बंद कर दे रहे हैं। गहराई से अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष सामने आता है कि अपने पारम्परिक व्यवसाय में उन्नति के अवसर युवा पीढ़ी नहीं ढूंढ पा रही है। जब वे यह देखते हैं कि उनके साथ के ही युवा विश्व व्यवसायिकरण से जुड़ कर उनसे काफी आगे निकल जा रहे हैं, तो अपने ही पारम्परिक

ज्ञान को लेकर उनका मोहभंग हो जाता है। वे अपने पुरातन व्यवसाय को तिरस्कार कि दृष्टि से देखने लग जाते हैं। परंतु कुछ युवा ऐसे भी सामने आए हैं , जिन्होने न सिर्फ अपने व्यवसाय को आगे बढ़ाया है, अपितु दुनिया के सामने एक मिसाल भी कायम की हैं। मिट्टीकूल के नाम से अपने पारम्परिक पेशे को आगे बढ़ानेवाले एक कुम्हार मनसुखभाई राघवजीभाई प्रजापति जो गुजरात के किसी छोटे से शहर से हैं, उन्होंने अपने व्यवसाय को एक नयी पहचान दी है। उन्होने मिट्टी से रेफ्रीजेरेटर तक बना दिया,जो बिना किसी ऊर्जा के संचालित होता है। इसके लिए पुरानी तकनीक का ही प्रयोग किया गया है।

ऐसी तकनीक के संरक्षण, सुरक्षा एवं संवर्धन कि दिशा में कारगर प्रयास होने चाहिए। लोकविद्या और आयुर्वेद के माध्यम से सामाजिक जीवन को परिवर्तित किया जा सकता है। उन्हें उनके पारम्परागत ज्ञान को बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करना तथा नयी सोच को विकसित करना चाहिए। विश्व व्यापार संगठन कि मुक्त व्यापार नीति के कारण हमें भी अपने भारतीय पारम्परागत ज्ञान को संरक्षित करने के साथ साथ उस ज्ञान का इस्तेमाल प्रोद्योगिकी विकास, नए रोजगार सृजन एवं औद्योगिकीकरण में करना चाहिए। यह आवश्यक हो जाता है कि इन पारम्परागत ज्ञान को विज्ञान कि कसोटी पर वैज्ञानिक शोध के द्वारा सत्यापित कर व्यवस्थित रूप से लिपिबद्ध कर डिजिटेलाइजेशन करना चाहिए।

भारत का पड़ोसी देशों से संबंध

सावन कुमार
भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

भारतीय सभ्यता व संस्कृति का विकास सिन्धु घाटी सभ्यता से माना जाता है, जो अपने विशाल साम्राज्यों, व्यापार, सांस्कृतिक विकास वा आर्थिक सफलताओं के लिए जानी जाती है। इसका नाम आर्यावर्त, उत्तर भारत में बसने वाले आर्यो के नाम पर किया गया है। इन आर्यों के शक्तिशाली राजा भरत के नाम पर यह भारतवर्ष कहलाया। वैदिक आर्यों का निवास स्थान सिन्धु नदी घाटी में था। ईरानियों ने इस नदी को हिन्दु नदी तथा इस देश को हिन्दुस्तान कहा। यूनानियों ने सिन्धु नदी को इण्डस तथा इस देश को इण्डिया कहा।

भारत अक्षांशीय एवं देशांतरीय दृष्टि से क्रमशः उत्तरी गोलार्द्ध और पूर्वी गोलार्द्ध में स्थित है। भारत की मुख्य भूमि दक्षिण से उत्तर $8^{0}4'$ से $37^{0}6'$, उत्तरी अक्षांशों एवं पश्चिम से पूर्व $68^{0}7'$ से $97^{0}25'$ पूर्वी देशान्तरों के मध्य विस्तृत है। वर्ष 2011 से अब तक भारीत की आबादी 121 करोड़ से अधिक हो चुकी है तथा यह चीन के बाद विश्व का दूसरा सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है। यहाँ विश्व की कुल जनसंख्या का 17.5 प्रतिशत निवास करता है। क्षेत्रफल की दृष्टी से भारत विश्व का सातवाँ बड़ा देश है, जिसका क्षेत्रफल 32,87,263 वर्ग किमी0 है। यह विश्व के स्थलीय धरातल का 2.4 प्रतिशत भाग है। उत्तर से दक्षिण तक इसकी वास्तविक दूरी 3214 किमी0 और पूर्व से पश्चिम तक इसकी दूरी केवत 2933 किमी0 है। भारत दक्षिण एशिया में क्षेत्रफल एवं जनसंख्या दोनों की दृष्टि से सबसे बड़ा देश है। इसकी सीमाओं से लगे कुल 7 पड़ोसी देश हैं– 1. बंग्लादेश, 2. चीन, 3. पाकिस्तान, 4. नेपाल, 5. म्यांमार, 6. भूटान, 7. अफगानिस्तान।

1. भारत और बांग्लादेश संबंध

भारत के स्थलीय पड़ोसी देशों में सबसे ज्यादा स्थलीय सीमा बांग्लादेश के साथ 4096 कि.मी. है तथा भारत के पांच राज्य पश्चिम बंगाल, मेघालय, मीजोरम, त्रिपुरा और असम है। बांग्लादेश पहले पाकिस्तान का

हिस्सा था जिसे पूर्वी पाकिस्तान कहा जाता था लेकिन पाकिस्तान के तानाशाही रवैये के कारण भारत को बीच में हस्थक्षेप कर सैनिक कार्यवाही करनी पड़ी और 6 दिसम्बर 1971 को बांग्लादेश को एक स्वतंत्र राष्ट्र क रूप में मान्यता प्राप्त हुई।

जनसंख्या की दृष्टि से बांग्लादेश विश्व का दूसरा सबसे बड़ा मुस्लिम देश है, लेकिन यह आर्थिक रूप से काफी पिछड़ा हुआ है। इसलिए भारत बांग्लादेश को जितना हो सके उतना मदद करता है, बांग्लादेश भी भारत को बड़े भाई की तरह ही व्यवहार करता है।

कभी–कभी बांग्लादेश में सत्ता परिवर्तन होने पर दोनों देशों के रिश्तों में गरमाहट आ जाती है। बांग्लादेश ''न्यू मूर द्विप'' पर अपना दावा करता रहता है तो कभी गंगा की पानी को लेकर विवाद करता है। दोनों देशों के बीच जब क्रिकेट मैच होता है और बांग्लादेश मैच जीत जाता है तो वहाँ के अखबार में भारतीय क्रिकेटरों को नीचा दिखाने का प्रयास किया जाता है।

इन सारे समस्याओं के बावजूद भी भारत बांग्लादेश संबंध अच्छा कहा जा सकता है क्योंकि बांग्लादेश के साथ भारत की जो भी समस्याएं है उसे बातों से सुलझाया जा सकता है।

2. भारत और चीन संबंध

भारत और चीन का संबंध सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से शुरू से ही रहा है, बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार चीन में बहुत हुआ और चीन के लोग बौद्ध धर्म मानते हैं।

प्राचीन काल से ही चीन के विद्यार्थी भारत में पढ़ने के लिए आते हैं। वर्ष 1954 के जून माह में चीन, भारत व म्यामार द्वारा श्शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के पांच सिद्धान्त यानी पंचशील प्रवर्तित किये गये। पंचशील चीन व भारत द्वारा दुनिया की शांति व सुरक्षा मे किया गया एक महत्वपूर्ण योगदान था और आज तक दोनों देशों की जनता की जुबान पर है। देशों के संबंधों को लेकर स्थापित इन सिद्धांतों की मुख्य विषय वस्तु है एक दूसरे की प्रभुसत्ता व प्रादेशिक अखण्डता का सम्मान किया जाये, एक दूसरे पर आक्रमण न किया जाये, एक दूसरे के अंदरूनी मामलों में दखल न दी जाये और समानता व आपसी लाभ के आधार पर शांतिपूर्ण सहअस्तित्व बरकरार रखा जाये। परन्तु चीन के मैत्री संबन्धों को ताख पर रख कर 1962 में भारत पर आक्रमण कर दिया और भारत की बहुत सारी जमीन पर कब्जा करते हुए 21 नवम्बर 1962 को एकपक्षीय युद्ध विराम की घोषणा कर दी। उस समय से दोनों देशों के संबंध आज तक सामान्य नहीं हो पाये हैं।

जवाहर लाल नेहरू के बाद लाल बहादुर शास्त्री ने चीन से दोस्ती का हाथ आगे बढ़ाया, परन्तु भारत को सफलता नहीं मिली, क्योंकि चीन ने भारत–पाकिस्तान युद्ध में पाकिस्तान का समर्थन किया था। भारत के काराकोरम क्षेत्र में पाकिस्तान ने चीन को बसा दिया। चीन का रवैया पाकिस्तान जैसा तो नहीं है लेकिन भारत की भूमि को हड़पने का मनसूबा हमेशा बना रहता है। हर बार अपने सैनिकों द्वारा चीन भारत के क्षेत्रों में प्रवेश कर जाता है। अभी कुद दिन पहले चीन के सैनिकों ने घातक हथियार से हमारे सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। चीन शुरू से ही पाकिस्तान का साथ देता रहा है। भारत चीन के संबंध मधुर तो नहीं हैं लेकिन बात–चीत करके दोनों देशों का संबंध सुधारा जा सकता है।

3. भारत और पाकिस्तान संबंध

आजादी के समय से ही भारत और पाकिस्तान के संबंध अच्छे नहीं हैं। 14 अगस्त 1947 को पाकिस्तान एक राष्ट्र बना तथा 15 अगस्त 1947 को भारत अस्तित्व में आया। इन दोनों देशों की सीमा ''रेडकिल्फ लाईन'' बनी। भारत के गुजरात, राजस्थान, पंजाब और जम्मू–कश्मीर सहित कु 3323 किमी. अन्तर्राष्ट्रीय सीमा है। आजादी के बाद से ही पाकिस्तान की नजर काश्मीर पर टिकी हुई हैं। पाकिस्तान जब आजाद हुआ उस समय कश्मीर के स्वतंत्र राजा हरि सिंह थे। काश्मीर आजादी के समय न तो भारत का हिस्सा था और न ही पाकिस्तान का। पाकिस्तान की आर्मी और कबीलाईयाँ ने जब कश्मीर पर हमला किया तो काश्मीर के राजा हरि सिंह अपना विलय भारत के साथ कर सैनिक कार्यवाही करने को कहा, जब तक भारतीय सैनिक वहाँ पहुंच पाते, पाकिस्तान कश्मीर के बहुत बड़े भूभाग को अपने कब्जे में ले रखा था जिसे आज पाक अधिकृत कश्मीर कहते हैं।

पाकिस्तान भारत पर बार – बार आतंकवादी हमला करवाता रहता है। पाकिस्तान द्वारा भारतीय संसद पर हमला, होटल ताज पर हमला, उरी सैन्य ठिकाना पर

हमला बहुत सारे उदाहरण हैं। पाकिस्तान अपनी हरकतों से बाज नहीं आता है। पाकिस्तान के साथ भारत के तीन बड़े–बड़े युद्ध हो चुके हैं लेकिन अभी भी कोई रास्ता निकल कर सामने नहीं आया है। भारत हमेशा से पाकिस्तान के साथ अच्छे व्यवहार करते आया है जो एक अच्छे पड़ोसी के साथ होना चाहिए, लेकिन पाकिस्तान कभी भी भूल से भी भारत के प्रति अच्छा रवैया नहीं अपनाता है। पूरे विश्व में भारत को हमेशा से नीचे दिखाने का प्रयास करता है। जब कभी भारत और पाकिस्तान के बीच क्रिकेट मैच होता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह मैच नहीं दोनों देशों के बीच युद्ध चल रहा है।

अब स्थिति ऐसी हो चुकी है कि दोनों देश एक दूसरे को घृणा भरी नजरों से देखते हैं। पिछले 20 सालों में सबसे बड़ा आतंकी हमला उरी सेक्टर में 18 सितम्बर 2016 को एल.ओ.सी. के पास स्थित भारतीय सेना के स्थानीय मुख्यालय पर हुआ, जिसके कारण भारत भर में पाकिस्तान के प्रति रोष प्रकट हुआ और भारत सरकार ने कई अप्रत्याशित कदम उठाए जिनसे भारत पाकिस्तान संबंध प्रभावित हुए।

भारत सरकार ने कूटनीतिक स्तर पर विश्व भर में पाकिस्तान को अलग–थलग करने की मुहिम छेड़ दी। संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत के विदेश मंत्री ने आतंकवाद को पोषण करने वाले देशों की निंदा की तथा साफ श्शब्दों में कहा कश्मीर छिनने का सपना पूरा नहीं होगा। 2016 में सार्क शिखर सम्मेलन इस्लामाबाद में होने वाला था भारत उस शिखर सम्मेलन का बहिस्कार किया जिसमें बांग्लादेश, अफगानिस्तान और भूटान ने भारत के बहिस्कार का समर्थन किया।

उरी हमले के जवाब में भारतीय सेना ने सर्जिकल स्ट्राइक करके पाकिस्तान के आतंकवादी ठिकानों को ध्वस्त कर दिया। अतः भारत पाकिस्तान के संबंधों में इतना गरमाहट है जिसे दूर कर पाना संभव नहीं है।

4. भारत – नेपाल संबंध

नेपाल एक गरीब राष्ट्र है। यह एक ओर चीन से इसकी सीमा बनती है तो तीन तरफ से भारत से घिरा है। इन दोंनों देशों के सम्बन्ध इतने अच्छे हैं कि दोनों देशों के नागरिक बिना वीजा और पासपोर्ट के एक–दूसरे देशों में आ जा सकते हैं। भारत इन्हें हर तरह की सहायता प्रदान करता है और अपने अच्छे पड़ोसी होने का फर्ज अदा करता है।

5. भारत– भूटान संबंध

भूटान एक खुशहाल और शांतिप्रिय देश है। 1949 में दोनों ने मैत्री संधि पर हस्ताक्षर किये जिसके अन्तर्गत दोनों देश एक–दूसरे की सहायता करेंगे और आज तक दोनों देश एक–दूसरे के प्रति ईमानदार बने हुए है। भारत का संबंध भूटान के साथ बहुत ही अच्छा है।

6. भारत–म्यांमार संबंध

म्यांमार भारत के पूर्व में स्थित है इसकी सीमा भारतीय राज्य अरूणांचल प्रदेश, नागालैण्ड, मणिपुर और मिजोरम से मिली हुई है। 1948 में म्यांमार की आजादी के बाद से ही दोनों देशों में मधुर संबंध बने हुए हैं। म्यांमार में सेना द्वारा तख्ता पलट देने के बाद दोनों देश में खटास आ गया था। प्रधानमंत्री पी0वी0 नरसिम्हा राव और अटल बिहारी बाजपेयी संबंधों को सुधारने में सफल रहें। दोनों देशों की सरकारें कृषि, दूर संचार, सूचना एवं प्रौद्योगिकी, स्टील, तेल, प्राकृतिक गैस, खाद आदि मुद्दों पर एक दूसरे का सहयोग करते हैं।

7. भारत– अफगानिस्तान संबंध

भारत का अफगानिस्तान से संबंध शुरू से ही अच्छा रहा है। सदा एक दूसरे का वो सहयोग किये है। भारत ने अफगानिस्तान से सांस्कृतिक आदान–प्रदान हेतु उदार वीजा नीति की घोषणा की। दोनों देशों के बीच सामरिक समझौता हो चुकी है। भारत ने अफगानिस्तान को उपहार स्वरूप तीन चीतल हेलिकाप्टर दिये। साथ ही रक्षा, कृषि, शिक्षा, ऊर्जा और सुरक्षा में सहयोग करने का वादा किया है। अतः हम यह कह सकते हैं कि दोनों देश के संबंध मधुर है। भारत के पड़ोसी देशों में दो नाम और है जिसकी सीमा भारत से जलीय है। ये राष्ट्र श्री लंका और मालदीव हैं।

8. भारत और श्रीलंका का संबंध

शुरूआत में भारत और श्रीलंका के संबंध बहुत अच्छे थे लेकिन श्रीलंका में गृह युद्ध होने लगा जिसमें भारत के हस्तक्षेत करने से भारत को भारी क्षति हुई। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की हत्या लिट्टे संगठन द्वारा कर दी गई। दोनों देशों में द्वि–पक्षीय

व्यापार से अब धीरे–धीरे दोनों देशों के संबंध सुधर रहें हैं।

9. भारत और मालदीव का संबंध

मालदीव में 1200 से अधिक छोटे–छोटे द्वीपों का समूह है। यह हिन्द महासागर में अवस्थित सामरिक दृष्टि से काफी भारत के लिए महत्वपूर्ण है। भारत हमेशा से हर तरह की सहायता मालदीव को प्रदान करता रहा है। इस देश की सहायता की जिम्मेदारी भारत अपने उपर रखा है और उसे पूरा भी करता है। अतः भारत का अपने पड़ोसी देशों में पाकिस्तान और चीन को छोड़ कर सभी अन्य पड़ोसी देशों के साथ अच्छे संबंध हैं।

लॉकडाउन – वरदान या अभिशाप

उपज्ञा साह एवं मुनीष कुमार
भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

यह एक प्रकार का आपातकाल ही है, जिसे लोगों के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए उठाया गया है। भारत के साथ–साथ विश्व के कई अन्य देशों ने कोरोना नामक महामारी से रोकथाम हेतु इसे अपनाया और इसके सहारे सामाजिक दूरी बनाने की कोशिश की गयी है ताकि कोरोंना को हराया जा सके।

भरता के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने मार्च के महीने में 24 तारीख को 21 दिन के लॉकडाउन की घोषणा की थी। मोदी जी द्वारा उठाया गया यह एक ऐतिहासिक कदम था और उन्होंने ऐसा कोरोना नामक महामारी से देश को बचाने के लिये किया।

लॉकडाउन का प्रभाव

लॉकडाउन के प्रभाव बहुत गहरे होते हैं, क्यों की यह किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को डगमगा देता है। जब हम काम पर जाते हैं, तभी देश आगे बढ़ता है और जब देश के सारी उद्योग बंद हो जायेंगे, सब घर पर बैठ जायेंगे तो देश का विकास भी रुक जाता है और इससे अर्थव्यवस्था को भारी क्षति पहुँचती है।

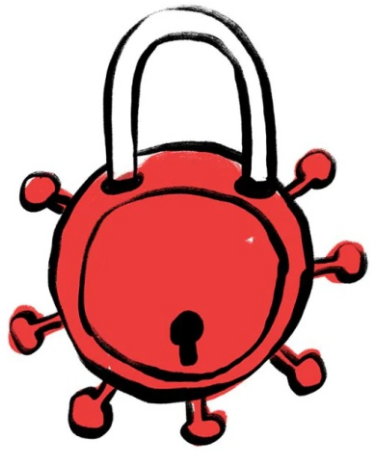

कोविड -19 लॉकडाउन

लॉकडाउन से देश की जी. डी.पी., विकास दर, सब में कमी आ जाती है और यह किसी के लिये ठीक नहीं। हम दूसरे देशों की अपेक्षा कई वर्ष पीछे जा सकते हैं। परंतु जीवन से बढ़ कर शायद कुछ भी नहीं और ये हमारे नेता भी समझते हैं और हमारे हित में ही इस कदम को उठाया।

मजदूर, महिलाएं, दिहाड़ी पर काम करने वाले लोग, इस लॉकडाउन से सबसे अधिक प्रभावित हुए हैं। उनकी स्थिति कुछ ऐसी है की वे घर में रहे तो बिना खाए मर जाते और बाहर रहें तो इस महामारी से।

लॉकडाउन अर्थात बंद, चाहे वह भारत हो या चीन, ऐसी स्थिति में जब पूरा देश बंद हो उसे लॉकडाउन कहते हैं। भारत में ऐसी स्थिति पहली बार देखी गयी है, जब पूरा देश बंद हो। लोग हैं पर सडकों पर सन्नाटा पसरा है, नुक्कड़ पर अब भीड़ नहीं लगती और चाय की दुकानों पर अब लोग गप नहीं मारते। अगर कुछ है तो इस लॉकडाउन का। यह एक प्रकार की आपातकालीन स्थिति है जिसका सीधा असर देश की अर्थव्यवस्था पर देखने को मिल सकता है। सन्नाटा और सन्नाटे को चीरती हुई पुलिस की गाड़ियों के सायरन। कुछ ऐसा आलम है।

भारत में क्यों किया गया लॉकडाउन

कोरोना एक जानलेवा वायरस का नाम है जो कि बड़ी तेजी से पूरे विश्व में फैल रहा है। इसकी शुरुवात चीन में हुई थी जो की धीरे–धीरे पूरे विश्व में फैल गया। इटली, स्पेन, यूएस कुछ ऐसे देश हैं जो इससे बुरी तरह ग्रसित हैं और इन देशों में हालात बेकाबू हो चुके हैं और सरकार कुछ नहीं कर पा रही।

इन सबसे सबक लेते हुए और भारत में ऐसी स्थिति न आये इस लिये सरकार ने ऐसे बड़े कदम उठाये। कोरोना से बचाव ही इससे बचने का सर्वोत्तम उपाय है। आपस में 5–6 फीट की दूरी बनाये रखना, मास्क पहनना, हाथों को समय–समय पर साबुन से कम से कम 20 सेकेंड तक धोना ही इसका इलाज है। और सामाजिक दूरी बनाना, आवश्यकता न होने पर घर से न निकलना, जैसे काम कर के आप खुद को सुरक्षित रख सकते हैं और इस लॉकडाउन को सफल बना सकते हैं।

लॉकडाउन के कारण बहुत से लाभ है उसक साथ साथ बहुत से हानियाँ भी हैं। पहले तो हम एक नजर इसकी सकारात्मक पहलू पर डालते हैं ।

प्रकृति के लिए बहुत बड़ा वरदान

प्रदूषण के लिए वरदान

पर्यावरण के लिए लाकडाउन वरदान साबित हुआ है। लाकडाउन से प्रदूषण में भारी कमी आयी है। यकीनन, कोरोना वायरस के प्रकोप की रोकथाम के लिए

24 मार्च से लाकडाउन गरीब– गुरबों और प्रवासी मजदूरों के लिए आफत बनकार आया है, लेकिन इसका एक नतीजा हर तरह के प्रदूषण में भारी कमी के रूप में दिख रहा है। वाकई यह सुखद एहसास पैदा करता है, मानो प्रकृति अपने मूल स्वरूप में लौट गयी है। हवा पानी शुद्ध साफ स्वरूप में दिखने लगा है। इसके नजारे उत्तराखंड में सबसे स्पष्ट दिख रहे हैं, २०० किमी. दूर से ही शिवालिक पर्वत श्रंखलाओं की चोटियां दिखाई देने लगी हैं। देश के प्रमुख तीर्थ स्थल हरिद्धार और ऋषिकेश में गंगा जल एक दम साफ नीला दिखता है और वैज्ञानिक इसे पीने योग्य बता रहें हैं।

वायु का शुद्ध होना – पूरी दूनिया में लॉकडाउन के बाद पर्यावरण और वायु में उल्लेखनीय सुधार दर्ज किया गया। अब नासा के सैटेलाइट सेंसर से पता चला है कि उत्तर भारत में दो दशक में वायु प्रदूषण का स्तर सबसे कम है। नासा में यूनिवर्सिटी स्पेस रिसर्च एसोसिएशन में भारतीय वैज्ञानिक पवन गुप्ता ने बताया कि हमारा अनुमान था कि लॉकडाउन के दौरान कई स्थानों पर वायुमंडलीय संरचना में बदलाव आएगा। लेकिन हवा में मौजूद एयरसोल का स्तर इतान कम हो जाएगा, ये अंदाजा नहीं था। उन्होंनें बताया कि वायु प्रदूषण के स्तर में कमी की वजह लॉकडाउन के साथ ही उत्तर भारत के कुछ इलाकों में बारिश भी हुई। बारिश से हवा के एयरोसोल नीचे बैठ गये। मौसम विज्ञानी रॉबर्ट लेवी का कहना है कि बारिश एयरोसोल को हवा से बाहर कर देती है, भारी बारिश के बाद इसका स्तर बढ. जाता है, यह अच्छा संकेत है, इस बार एयरोसोल का स्तर बढा. नहीं, लेकिन ये तभी संभव है जब कार्बन उत्सर्जन पर अंकुश लगाया जाए।

मौसम मे बदलाव – बदलाव की दो वजह है। पहला यह कि शहर और आसपास के क्षेत्र में 75 प्रतिशत वाहन एक माह से अधिक समय से बंद हैं। कल–कारखाने बंद हैं। व्यावसायिक स्थल बंद होने से जेनरेटर और एयर कंडीशन भी शांत पड़ा है। यही कारण है कि कार्बन उत्सर्जन 60 से 70 प्रतिशत तक घट गया है। वायुमंडल में कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा घटने से ग्रीन हाउस प्रभाव भी घटा है। यही कारण है कि अन्य वर्षों की अपेक्षा इस बार गर्मी कम महसूस की जा रही है। दूसरा कारण यह है कि प्रदूषण कम होने के कारण पश्चिमी विक्षोभ का पैटर्न बदल रहा है। पहले मार्च माह तक पश्चिमी विक्षोभ आता था, लेकिन इस साल मई माह में भी इसका असर देखा जा रहा है। यही कारण है कि अप्रैल व मई महीने में समय–समय पर बारिश हो रही है।

ओजोन पीएआरएटी के छिद्र का कम होना – दुनियाभर में प्रदूषण में कमी आने से ओजोन परत पर भी असर दिख रहा है। नेचर मैग्जीन में प्रकाशित लेख में कहा गया है कि आने वाले समय में ओजोन परत पहले की तरह हो सकता है।

अनावश्यक खर्चो पे रोक – लॉकडाउन की स्थिंति में लोगों को घरों से निकलने की अनुमति नहीं होती है, उन्हें सिर्फ दवा या खाने–पीने की जरूरी चीजों के लिए घर से बाहर निकलने की इजाजत होती है किसी इलाके में लॉकडाउन के दौरान सामान्य तौर पर जरूरी चीजों की आपूर्ति प्रभावित नहीं जाती है। इसमें राशन, मेडिकल से जुड़ी चीजें, बैंक, दूध–मीट आदि की दुकान चलती रहती हैं. लॉक डाउन में गैर जरूरी गतिविधियों को रोक दिया जाता है. यात्रा पर रोक इसमें अहम है, यातायात के सार्वजनिक साधनों को लॉकडाउन में बंद कर दिया जाता है। इससे अनावश्यक खर्चे मे कमी आयी है।

पक्षियों के कलरव – हम सब घर बैठे चिड़ियों की चहचहाहट आसानी से सुन सकते हैं, जो पहले ध्वनि प्रदूषण की वजह से इतना साफ नहीं सुनाई देती थी। वायु और धूल प्रदूषण के काफी कम हो जाने से आसमन में रात को सारे तारे दिखा रहे हैं जो पहले नहीं दीखते थे. ध्वनि प्रदूषण तो इतना कम है की आपकी आवाज दूर तक सुनाई दे रही है। चिड़ियों का चहचहाना सुबह से ही शुरू हो जा रहा है.कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कहा की रात दो बजे भी चिड़ियों की आवाज सुनाई दे रही है खासकर कोयल और बुलबुल की। कुछ ऐसी भी चिड़ियाँ नजर आ रही हैं जो पहले कम दिखती थीं।

लॉकडाउन के फायदे

- भारत में लॉकडाउन कोरोना वायरस से निपटने के लिये किया गया और माना जाता है की यही इसका सर्वोत्तम उपाय है। कोरोना एक दूसरे में बड़े तेजी से फैलता है और इससे बचाव ही इसकी दवा है। हमारे प्रधानमंत्री जी ने देश की जनता के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए, लॉकडाउन का ऐलान किया।

- लॉकडाउन की वजह से कोरोना को फैलने के लिये लोग ही नहीं मिलेंगे और इससे कोरोना के बढ़ने की संभावना बहुत कम है।
- 21 दिन के बंद से हमारी प्रकृति को जैसे नया जीवन मिल गया हो और प्रदूषण का स्तर भी बहुत कम हुआ है। क्यों की सारे यातायात के साधन बंद हैं, फैक्ट्रियां सब बंद हैं।
- लोगों के मनोरंजन को ध्यान रखते हुए सरकार रामायण एवं महाभारत जैसे पौराणिक सीरियल का प्रसारण दोबारा दूरदर्शन पर कराया और यह लॉकडाउन की वजह से ही हुआ। ताकि लोग घर पर रह सकें।
- लॉकडाउन जिसका दूसरा नाम क्वॉरेंटाइन भी कहा जा रहा है, माना जा रहा है की आप जितना कम अपने घर से निकलेंगे, आपको कोरोना होने की संभावना उतना कम होगा।
- समस्या बड़ी हो तो उसका रोकथाम भी वृहद होना चाहिए और लॉकडाउन इसी का उदहारण है। इतने बड़े पैमाने पर एक देश को पूरी तरह बंद कर देना न तो आसान है और न ही कोई खेल। इतिहास गवाह है की भारतीय रेल इससे पहले कभी नहीं रुकी थी, परंतु स्थिति भयावह न हो जाये इस लिये ऐसे कदम उठाया गया। घर पर रहें सुरक्षित रहें और कोरोना को हराएं एवं लॉकडाउन को सफल बनायें।

लॉकडाउन के सकारात्मक प्रभाव

- एक तरफ कोरोना पर काबू पाने में मददगार साबित हुआ क्यों की जब लोग ही नहीं होंगे तो ये फैलेगा कैसे।
- पर्यावरण को भी खुद को साफ करने का थोड़ा समय मिल गया।
- कई परिवारों में समय के कमी के कारण आई दूरियां खत्म हो गई।
- जो लोग ऐसे नहीं सुधरते वे कम से कम परिवार के लिये बाहर नहीं जाते।

लॉकडाउन के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव हैं, परंतु उद्देशय कोरोना से लड़ना और उसे हराना ही है। जब सरकार अपने अर्थव्यवस्था की चिंता न करते हुए हमारे हित के बारे में सोचते हुए इतना बड़ा कदम उठा रही है तो, यह हमारा भी कर्तव्य है की हम इसका पालन करें। घर पर रहें, लोगों से दूरी बनायें रखें, खुद भी स्वास्थ्य रहें और दूसरों को प्रेरित करें। ऐसे संकट की घड़ी में सबको डट कर इसका सामना करना है।

निष्कर्ष

देश एक बड़ी ही दयनीय स्थिति से गुजर रहा है और आने वाले कई महीनों तक इसके प्रभाव देखने को मिल सकता है। इसलिए हमे सतर्क रहना चाहिए और कोरोना से लड़ने में अपनी अहम भूमिका निभाते रहनी चाहिए और लॉकडाउन से देश को उबरने में अपना पूरा सहयोग देंना चाहिए। वन्यजीवों का आचरण विचरण, जो इंसानी दखल से कम हो गया था, लॉकडाउन की वजह से प्रकृति अपने मूल रूप में आ रही है। हम सब इससे सबक लेकर कम से कम महीने में एक दिन संपूर्ण लॉकडाउन करके प्रकृति को होने वाले नुकसान में कमी कर सकते हैं।

संग्रहालय की भूमिका एवं सतत् विकास : कोविड–19 के दौर में एवं उसके पश्चात

कुमार सत्यम
होटल प्रबंध संस्थान, भोपाल

संग्रहालय शब्द का अर्थ है संग्रह का घर, यानि वह स्थान जहाँ पुरानी और विशेष वस्तुएँसंग्रहित की जाती है। आम शब्दों में कहा जाय तो ऐसा स्थान जहाँ तकनीकी, औद्योगिकी, प्राकृतिक विज्ञान, वन, कृषि, पुरातत्व, वाणिज्य, उद्योग, लोककला, शिल्पकला आदि से संबन्धित ऐतिहासिक वस्तुओं को एकत्रित किया जाता है, जिसका उद्देश्य आम जनता को इन चीजों से अवगत कराना होता है। इसमें विशेष रूप से वस्तुओं को संग्रहित और प्रदर्शित कर लोगों तक अनौपचारिक शिक्षा का प्रसार किया जाता है तथा आम जनता को अपनी संस्कृति एवं सभ्यता से परिचित कराया जाता है।

संग्रहालयः संक्षिप्त जानकारी

संग्रहालय किसी भी समाज के संस्कृति और बुद्धिजीवी जीवन का अभिन्न अंग बन गया है। विज्ञान और प्राकृतिक संग्रहालय के माध्यम से संबन्धित विषयों की शिक्षा अनौपचारिक ढंग से दी जा सकती है। संग्रहालय एक सार्वजनिक संस्थान है, जिसमें वर्तमान से पूर्व प्राप्त सभी सामग्रियों को व्यवस्थित ढंग से सुरक्षित किया जाता है। संग्रहालय में एकत्रित सामग्रियों का अवलोकन कर हम अपने पूर्व के वातावरण और उसमे आए परिवर्तनों का अनुभव आसानी से कर सकते हैं एवं उन सभी विषयों में और अधिक खोज की जा सकती है, जो भविष्य के निर्माण में सहायक होंगे। मानव जिज्ञासा प्रवृति का होता है, वह हर एक वस्तुओं से जानकारी प्राप्त करना चाहता है। उसकी उत्सुकता और कौतूहल ही नए चीजों को खोजने में मदद करती है । संग्रहालय में हमारी संस्कृति से जुड़ी कई चीजें होती हैं, जो मानवविकास के बारे में जानकारी उपलब्ध कराती हैं। किसी भी देश का विकास वहाँ की संस्कृति पर निर्भर करता है। संकृति के विविध पहलू में शिल्पकला, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत, साहित्य, अभिनय ये सभी आते हैं, जो विकास को गति प्रदान करते हैं। इन चीजों से जुड़ी समग्रियों का संग्रह उन्नत संस्कृति को दर्शाता है। इन स्थानों के दर्शन से ही जनमानस के मन अपनी संस्कृति के प्रति श्रद्धा और गर्व की भावना उत्पन्न होती है।

संग्रहालयः सामाजिक भूमिका

जनकल्याणकारी राज्यों में संग्रहालयों की स्थापना का उद्देश्य वहाँ की जनता को अपने राष्ट्र, राज्य और क्षेत्रों का परिचय देने के साथ–साथ विश्व में मौजूद विविध तरह की विद्याओं से परिचित कराना एवं विश्व को अपने राष्ट्र, राज्य और क्षेत्रों के विषय में ज्ञान प्रदान कराना है। आधुनिक समय में संग्रहालयों का दायित्व केवल पुरानी समग्रियों को प्राप्त करना और संग्रह करना ही नहीं, अपितु वस्तुओं को संरक्षित और प्रदर्शित करना भी है। शैक्षणिक क्रियाओं में संग्रहालय के माध्यम से पुस्तक रूपी ज्ञान को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से बच्चों को दिखा कर कई मायनों में उनका ज्ञानवर्धन किया जा सकता है। इन संग्रहालयों में रखी संबंधित विषयों की पुस्तकें एवं उनसे जुड़ी सामग्रियों का गहन अध्ययन करा कर बच्चों में उन विषयों के प्रति विशेष रुचि जगाई जा सकती है।

पर्यटन स्थलों पर संग्रहालयों की स्थापना का उद्देश्य पर्यटकों को अधिक संख्या में आकर्षित करना, उन्हें पुस्तकीय ज्ञान में दिये जीवंत जीवन कला, संस्कृति और इतिहास से परिचित कराना है, ताकि वे किसी भी देश की स्थानीय कला और संस्कृति को समझे, अन्य स्थानों के ज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन करें एवं विश्व में उनका प्रचार एवं प्रसार करें । संग्रहालयों में रखी वस्तुओं को सुयोजित और व्यवस्थित रूप देने का कार्यभार संग्रहालय अध्यक्ष और वहाँ के कर्मचारियों द्वारा किया जाता है। अतः प्रशिक्षित एवं योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति संग्रहालय प्रशासक की एक महत्वपूर्ण जिम्मेदारी होती है, जिससे उसकी गुणवत्ता को स्थापित किया जा सके। पर्यटन स्थलों पर संग्रहालयों में कार्यरत कर्मचारियों को विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है ताकि वे पर्यटकों को उनकी जिज्ञासा अनुसार विशेष सामग्री की सटीक जानकारी दे सके। संग्रहालय की सफलता का रहस्य वहाँ देखने आए जनता से है। इसलिए संग्रहालय अधिक से अधिक लोगों को आकर्षित करने के लिए समय समय पर विविध प्रकार के क्रियाकलापों का आयोजन करता है, जैसे प्रदर्शनी लगाना, खान–पकवान का स्टॉल लगाना, उत्सवों का आयोजन करना, चित्रपट (फिल्म)

दिखाना आदि।

लेकिन संग्रहालय के सम्मुख दर्शकों को अपने यहाँ खींच लाना हमेशा से ही चुनौतीपूर्ण कार्य रहा है। मौसम, वातावरण, परिवेश, राजनीतिक घटनाक्रम में बदलाव इसके लिए मुख्य कारण होते हैं, जिस कारण पर्यटक कई बार चाहते हुए भी वहाँ तक नहीं पहुँच पाते हैं। संग्रहालय जैसे सार्वजनिक जगहों पर संक्रमण की संभावना से भी इंकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वहाँ लोगों का आवागमन बना रहता है। वृद्धों एवं बच्चों का कई बार ऐसी जगहों पर जाना जोखिम भरा हो सकता है। गैलेरी लंबी होने के कारण वे अक्सर थकान महसूस करने लग जाते हैं, जिससे वे भ्रमण का पूरा आनंद नहीं ले पाते हैं। कई बार सामान्य व्यस्कों को भी इन दोनों उम्र के दर्शकों के साथ संग्रहालय में भ्रमण की अवधि छोटी करनी पड़ जाती है।

कोविड–19 और संग्रहालय को इसकी चुनौती

वर्तमान में वैश्विक महामारी कोविड–19 के कारण संग्रहालय जा पाना इतना सुगम नहीं हो पाएगा। कोविड–19 के कारण अब तो यह संग्रहालय के लिए एक बड़ी चुनौती से कम नहीं दिख रहा। कोविड–19 से बचाव के उपाय में सामाजिक दूरी का अनुपालन करना विशेष रूप से कारगर है एवं इसकी व्यवस्था करना संग्रहालय के लिए कहीं से भी आसान नहीं होगा। हर बार संक्रामण रहित वातावरण बनाये रखना संभव नहीं है। इस संकट से उबरने के लिए संग्रहालय प्रबन्धकों को नयी तरकीबें ढूंढनी पड़ेंगी। संग्रहालय में प्रदर्शन को लेकर काफी सतर्कता बरतने की आवश्यकता पड़ेगी। फिलहाल कोविड–19 के कारण अभी सभी सार्वजनिक संस्थान अनिश्चित काल के लिए बंद हैं एवं इसका दुष्प्रभाव काफी लंबे समय तक हमारे बीच रहेगा । बंद होने के कारण वहाँ रखी हुई संरक्षित वस्तुओं का रख रखाव उपयुक्त तरीके से कर पाना भी इतना आसान नहीं है, क्योंकि कर्मचारियों के आने जाने की मूलभूत सुविधा नहीं हैं । दूसरी तरफ अपने कर्मचारियों के स्वास्थ्य की सुरक्षा भी प्रशासन को रखनी है। मुद्रा का लेनदेन नहीं होने से संस्थान को वित्तीय संकट से भी जूझना पड़ सकता है। लोगों में अपनी पहुँच और लोकप्रियता को बनाये रखना भी संग्रहालय की अपनी बाध्यता होती है। समाज के लिए अपने उत्तरदायित्व को कायम रखना एवं उसे प्रतिपादित करना भी संग्रहालय की महत्वपूर्ण भूमिका है।

चुनौतीः एक अवसर उपलब्धि के लिए

कोविड –19 के द्वारा उत्पन्न हुए इस संकट से निपटने के लिए संग्रहालय को इसे चुनौती के साथ साथ अपने अस्तित्व को बनाये रखने के किए अपने नए अवसरों को भी तलाशना होगा । इन अवसरों को एक उपलब्धि के रूप में देखने की आवश्यकता है। दर्शकों के साथ जुड़े रहने के लिए कुछ संग्रहालय फेसबुक, ट्विट्टर, इन्स्टाग्राम आदि को अपना माध्यम बना रहे हैं। जब तक कोविड–19 के कारण वर्तमान की समस्या हमारे बीच है, तब तक संग्रहालय को अपने वित्त अर्जन के लिए कुछ ना कुछ तो करना ही होगा। इसके लिए अपने देश में भी दूरसंचार एवं इसकी तकनीक का इस्तेमाल संग्रहालय संस्थानों को करना होगा। "वर्चुअल रियलाइजशन" तकनीक का प्रयोग यहाँ काफी कारगर सिद्ध हो सकती है, जिससे दर्शकों को हर गैलेरी का इमेज का अनुभव बिना संग्रहालय पहुँचे, नजदीक से देखने एवं वहाँ उपस्थित होने का एहसास हो। सुविधा एवं प्रवेश शुल्क के द्वारा संग्रहालय अपने दर्शकों को वर्चुअल रियलाइजशन तकनीक के द्वारा प्रवेश की अनुमति दे सकता है । विभिन्न भाषाओं के माध्यम से दर्शक घर बैठे ही देश के किसी भी संग्रहालय का भ्रमण कर सकता है। इस मामले मे संग्रहालय को अपने ऑनलाइन संस्करणों को समय समय पर संशोधित करते रहने की आवश्यकता है। इस तकनीक के कारण दर्शक अनावश्यक आवागमन में अपने समय और संसाधन का बचत भी कर पायेंगे ।

कोविड–19 एवं इसके लिए अनुकूलता

संग्रहालय प्रशासन को इसके क्रियाकलापों को भी इस महामारी के अनुकूल ढालना होगा। निम्न तरीके के नए बचाव कार्यप्रणाली को अपने दैनिक जीवन में शामिल करना होगा।

- संग्रहालय के प्रवेश द्वार पर ही थर्मल स्कैनिंग की व्यवस्था करनी पड़ेगी और इसके लिए उपयुक्त एवं प्रशिक्षित कर्मचारी को इसका कार्यभार दिया जाना होगा।
- केंद्र एवं राज्य सरकार द्वार समय समय पर जारी रहे संबन्धित सूचनाओं को कर्मचारियों एवं दर्शकों के लिए अलग अलग सुचना पटल के द्वारा दर्शित किया जाना

चाहिए।

- संग्रहालय के अधिकृत पोर्टल के माध्यम से एवं सुचना पटल के द्वारा दर्शकों को यह सुनिश्चित किया जाना भी आवश्यक है कि यह परिवेश किसी भी प्रकार के संक्रमण से सुरक्षित है। अतः दर्शकों से अपेक्षा है कि परस्पर सामाजिक दूरी का भरपूर ध्यान रखें और पालन करें। संस्थान द्वारा जगह जगह पर कार्यरत कर्मचारी इसे अनुपालन करने के घोषणाएँ भी करते रहें।
- जगह जगह पर ऑटोमैटिक फ्लो वाले सैनिटाइजिंग उपकरण की उपलब्धता की जानी चाहिए। साथ में सफाई कर्मचारी तैनात किए जाने चाहिये जो कि दरवाजे का हैंडल, सीधी की रेलिंग, एलिवेटर लिफ्ट के बटन, स्विचबोर्ड, शौचालय के फ्लश और नल की हर निश्चित अल्प समायावधि में सैनिटाइज करते रहें।
- प्रवेश द्वार पर भी ऑनलाइन टिकिट की व्यवस्थता बिना नोट करेंसी के माध्यम से देने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये, जिससे संक्रमण की संभावना को पहले चरण में ही दूर किया जा सके।
- दर्शकों को सीमित संख्या में ही प्रवेश की अनुमति दी जानी चाहिये। प्रवेश द्वार पर ही दर्शक के साथ फेस–मास्क की उपलब्धता सुनिश्चित की जानी चाहिये। किसी भी ऐसे दर्शक को प्रवेश नहीं मिलना निश्चित हो, जिसमे संक्रमण के लक्षण दिख रहे हों।

मनुष्य प्रारम्भ से ही गतिमान रहना पसंद करता है, डरकर रुक जाना उसकी नियति नहीं है। कोविड–19 हमारे जीवन का हिस्सा बन चुका है, इसलिए हमें भी इसके साथ स्वयं को ढालना ही होगा। हम रुक नहीं सकते और थकना हमें आता नहीं।

अद्भुत है अयोध्या का राम–राम वृक्ष

राज किशोर
डा. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या, फैजाबाद

रामनगरी अयोध्या और रामजन्मभूमि का कण–कण जिन दिव्य–दैवी निष्ठाओं से अनुप्राणित और प्रवाहमान है उनमें से एक अद्भुत 'रामनामी' वृक्ष भी है। इस वृक्ष के तने पर 'राम–राम', 'राम', 'सिताराम' एवं 'सीता' आदि शब्द अंकित मिलते हैं। इस 'राम–राम' वृक्ष के तने के ऊपर एक सिल्की छिलका होता है जो भोजपत्र सद्श्य होता है और सूखकर समय–समय पर अपने आप हटता रहता है। इस छिलके के हटने के बाद ही तने पर उल्लेखित सभी शब्द दिखते हैं। इन सार्थक पवित्र शब्दों के साथ–साथ अन्य बहुत से आधे–अधूरे शब्द और आड़ी–तिरछी रेखाएं भी तने पर दिखाई पड़ती हैं। इन अक्षरों को मिटाया नहीं जा सकता है। संन्दर्भित सभी शब्द न तो किसी बाहय वस्तु से लिखे प्रतीत होते हैं और न ही इनका अंकन कृत्रिम प्रतीत होता है।

अयोध्या में राम–राम वृक्ष का प्रादुर्भाव

रामनगरी अयोध्या के दर्शन नगर प्रक्षेत्र के ग्राम तकपुरा के मजरा निंरकारपुर के एक पुराने उपेक्षित पड़े आम के पुराने बाग में स्थित वर्तमान दुर्लभतम 'राम–राम' वृक्ष अपनी दूसरी पीढ़ी का वृक्ष है। आस–पास के निवासियों के अनुसार वर्तमान वृक्ष लगभग 30 दशक पुराना है। परन्तु इससे पूर्व पहली पीढ़ी का 'राम–राम' वृक्ष वर्तमान वृक्ष से लगभग 50 मीटर की दूरी पर स्थित था जो लगभग 50 दशक से भी ज्यादा पुराना हो चुका था। इस वृक्ष के चारो ओर की मिट्टी आस–पास के ग्रामीणों एवं ईंट भट्ठा व्यावसायियों द्वारा खोद लिए जाने के कारण यह वृक्ष सूख गया था। आस–पास के गांव वालों तथा अयोध्या के साधू –सन्तों को लम्बे समय तक इस वृक्ष के सूख जाने का दुख बना रहा परन्तु जब वर्तमान रामनामी वृक्ष का प्रकाट्य हुआ तो सभी की प्रसन्नता का पारावार नही रहा। आस्था के संवाहक इस अनोखे एंव दुर्लभ रामनामी वृक्ष से जो भी परिचित होता है, इस को देखता है, वो इसका अनुरागी हो जाता है।

इस रामनामी वृक्ष से एक मान्यता यह भी जुड़ी हुई है कि इसी वृक्ष से रामजन्मभूमि की खोज एंव पहचान प्रमाणित हुई थी। यह पौराणिक विवरण ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी का है, जब तीर्थराज प्रयाग ने रामनामी वृक्ष के आधार पर ही तत्कालीन महाराज विक्रमादित्य को राजन्मभूमि का जीर्णोद्धार कराने तथा अयोध्या और उसके पौराणिक धर्मस्थलों की खोज एवं उनकी पहचान स्पष्ट करने की युक्ति बताई थी। वस्तुतः यह एक लम्बी कथा है।'राम–राम' वृक्ष के रामनगरी अयोध्या में प्रादुर्भाव के पीछे एक जनश्रुति भी प्रचलित है। इस जनश्रुति के अनुसार भगवान श्रीराम और रावण के बीच हो रहे भीषण युद्ध में लक्ष्मणजी शक्तिबाण के आघात से मूर्छित हो मृतप्राय से हो गए थे। लक्ष्मणजी की चिकित्सा एवं उन्हे

पुनर्जीवन प्रदान करने के लिए लंका के तत्कालीन राजवैद्य श्री सुशेण ने संजीवनी बूटी का लाया जाना अत्यंत आवश्यक बताया था। संजीवनी बूटी केवल हिमालय पर्वत से ही लायी जा सकती थी। इस कार्य को हनुमानजी को सौंपा गया। संजीवनी बूटी की पहचान नहीं कर पाने के कारण हनुमानजी ने संजीवनी बूटी सहित अन्य औषधीय वनस्पतियों युक्त पूरा पहाड़ लेकर हिमालयी क्षेत्र से अयोध्या के आकाशीय मार्ग से श्रीलंका को जा रहे थे। उस समय भरतजी अयोध्या का राजसिंहासन त्याग कर श्रीरामजी की खड़ाऊं के साथ एक तपस्वी के रूप में नंदीग्राम (वर्तमान में 'भरतकुण्ड', अयोध्या) से अयोध्या का राज–काज चला रहे थे। हनुमानजी को पर्वत के साथ अयोध्या की सीमा में उड़ता देखकर उन्हे शत्रु समझकर उन्होनें हनुमानजी पर बाणों से आघात कर दिया जिसके फलस्वरूप हनुमानजी संजीवनी बूटी युक्त पहाड़ लेकर गिर पड़े। वे जिस क्षेत्र में गिरे थे, 'राम–राम' वृक्ष उसी क्षेत्र के निकट स्थित है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि 'राम–राम' वृक्ष भी उस पहाड़ से इसी क्षेत्र में गिर गया था, जहां आज वो खड़ा है।

'राम–राम' वृक्ष का वानस्पतिक विवरण

'राम–राम' वृक्ष के वानस्पतिक नाम के निर्धारण के लिए इसकी पत्तियों एवं अन्य वानस्पतिक गुणों के आधार पर लेखक द्वारा पहले इसकी एक सम्भावित पहचान यह निर्धारित की गई कि यह वनस्पति जगत के 'मालवेसी' कुल का सदस्य है। इसके बाद इसकी निश्चित पहचान के लिए इसके विस्तृत वानस्पतिक विवरण एंव सभी भागों के छाया चित्रों को लंदन स्थित 'रायल बॉटनिकल गार्डेन', किव, यू0 के0 को प्रेषित किया गया जहां से 'राम–राम' वृक्ष को सुनिश्चित पहचान मिली।

'राम–राम' वृक्ष का वानस्पतिक नाम '*स्टरकुलिया यूरेन्स*' (*Sterculia urens*) है और यह वानस्पतिक जगत के 'मालवेसी' (Malvaceae) कुल का सदस्य है। वृक्ष को 'स्टरकुलिया' नाम लैटिन भाशा के शब्द 'स्टरकुस' (*Stercus*) से मिला है जिसका शाब्दिक अर्थ है– 'खाद' या 'गंदगी'। वृक्ष को यह नाम उसके पुष्पों से निकलने वाली अरूचिकर गन्ध के कारण मिला है। स्टरकुलिया यूरेन्स एशिया (हिन्दुस्तान, म्यांमार और श्रीलंका) के मरूस्थलीय कटिबंधीय क्षेत्रों के अत्याधिक तापमान को सह सकने वाला एक पर्णपाती वृक्ष है। स्टरकुलिया अत्याधिक झाड़ीदार प्रकृति का एक मध्यम आकार का वृक्ष है जो 15–20 मीटर की अधिकतम ऊंचाई तक लम्बा हो सकता है। वृक्ष की छाल का रंग स्लेटी–सफेद से लेकर लाल रंग तक होता है और वो चमकीली आभा युक्त होती है। छाल के ऊपर भोजपत्र की भांति एक सिल्की कवर होता है जो कुछ दिनों बाद सूखकर स्वयं ही हट जाती है। पत्तियां 20–30 से0मी0 व्यास वाली पेन्टालोब्ड एंव पामेटली कंपाउंड होती हैं। पत्तियां एक लम्बे पेटियोल के द्वारा अपनी शाखा से जुड़ी रहती हैं। पत्तियों के निचले (वेन्ट्रल) भाग में खूब घने मुलायम रोयें होते हैं जबकि ऊपरी (डॉर्सल) भाग हल्का सा खुरदुरा होता है। पुष्प पेडिसिलेट एवं आकार में छोटे लेकिन संख्या में अधिक होते हैं। पुष्पों का रंग पीला–हरा होता है। बीजों का रंग गहरा भूरा होता है और खोल बहुत कठोर होती है। बीजों की गिरी भुनी हुई अवस्था में खाने योग्य होती है। भारत में स्टरकुलिया युरेन्स के वृक्ष गुजरात, राजस्थान, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र और केरल में वन वृक्ष के रूप में बहुतायत से पाए जाते हैं।

स्टरकुलिया युरेन्स के वृक्ष एन्डरोमोनोसियस होते हैं अर्थात् नर और मादा पुष्प द्विलिंगी होते हैं। वृक्षों पर दिसम्बर से फरवरी तक के समयकाल में पुष्पन अपनी चरम स्थिति में होता है। वृक्ष का प्रवर्धन केवल बीजों के द्वारा ही होता है। स्टरकुलिया युरेन्स को देश के अनेक भागों में अनेक पारम्परिक एंव स्थानिक नामों यथा, गुलु,

कदाया, कराया, कटेरा, टेकलेज, मुकारा, तापसी, भूतवृक्ष (Ghost Tree) या इंडिया गम (India Gum) के नामों से जाना जाता है। देश के विभिन्न राज्यों में *स्टरकुलिया यूरेन्स* के तने पर घाव बनाकर गोंद और म्युसिलेज प्राप्त किया जाता है। वृक्ष से प्राप्त होने वाली इस गोंद को

व्यापारिक क्षेत्रों में 'कराया गम' के नाम से जाना जाता है और यह उच्चस्तरीय व्यापारिक महत्व की होती है।

दीर्घकाल से स्टरकुलिया युरेन्स का उपयोग वृहद स्तर पर विभिन्न व्यापारिक कार्यों यथा, स्वास्थय सम्बंधी कार्यों, औशधीय कार्यों, खाद्य पदार्थ विशयक, सौन्दर्यवर्धक पदार्थों, वस्त्र उद्योग, तथा चर्म उद्योग आदि में किया जा रहा है। इन्ही असाधारण वैविध्यपूर्ण गुणों के कारण अन्तर्राश्ट्रीय व्यापारिक बाजार में स्टरकुलिया युरेन्स का विशेष महत्व है। विभिन्न कबीलाई जनजातियों द्वारा इस वृक्ष के विभिन्न भागों और उत्पादों का उपयोग ओलिगोस्पर्मिया, ल्यूकोरिया, कब्ज, शरीर में सूजन, गले का संक्रमण जैसे रोगों और घावों की चिकित्सा के लिए किया जाता है। संदर्भित सभी उपरोक्त कार्यों के लिए स्टरकुलिया यूरेन्स वृक्ष का इतना अत्याधिक दोहन किया गया है कि अब यह वृक्ष विलुप्तप्राय वृक्षों की श्रेणी में आ गया है।

बाग के पौधों की कहानी

लोकेश कुमार
भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

बाग में खिले पौधे की कहानी
बता रहा है वह अपनी जुबानी
कई मुश्किलों से होकर बीज से पौधा होता है,
कई बीमारियों से लड़ता एवं बचता हूँ,
दुश्मन है मेरे कितने होशियार,
जो हैं करते निरंतर प्रहार।
कुछ तो बीमार होता हूँ, प्रदूषण के चलते।
मिट्टी में रहता हूँ मैं आराम से,
कई दुश्मन भी बैढ़ें होते हैं उसमें।
उनसे लड़ाई करके होता हूँ अंकुरित,
अब मैं बाहरी आक्रमण से हूँ लडता।
मैं खेलते लड़खड़ाते आगे बढ़ता,
कई दुश्मन फिर आक्रमण हम पर करने आते।
वायरस, बैक्टीरिया और कीटाणु,
ये सब हैं मेरे दुश्मन।।
इसके लिए मैं पहले से तैयार रहता हूँ डट कर,
इससे निपटने के लिए बनाता हूँ हथियार कारगर।।
अनेक सुगंधित चीजों रहते मेरे संग,
अनेक तेल भी रहतें मेरे संग।
ये देते हैं हमको शक्ति और धैर्य,
ये कर देते हैं दुश्मन को परास्त।
मेरे पास हैं कई गुण कई लौह तत्व,
उससे होता है दुश्मन का अंत।
हमें मिलेगा पोषण निरंतर,
कर दूँगा हर बीमारी को छूमंतर।
और बन जाऊँगा तंदरूस्त युक्त पौधा फलदार।

हृदय के रोचक तथ्य

शकुन्तला साह एवं उपज्ञा साह
भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

1. हृदय दिल का वजन 250 से 350 ग्राम है, यह 12 सेमी. लम्बा, 8 सेमी. चौड़ा और 6 सेमी. मोटा यानि हमारी दोनों हाथों की मुटठी के बराबर है।
2. हमारा दिल एक मिनट में 72 बार और पूरे दिन में लगभग 1 लाख बार और पूरे जीवन में लगभग 2.5 अरब बार धड़कता है।
3. हमारा हृदय एक बार ध्ड़कने से 70 मिली. और 1 मिनट में 4.7 मिली. और पूरे दिन दिन में लगभग 7570 लीटर और पूरे जीवन में लगभग 16 करोड़ लीटर खून पम्प करता है।
4. अभी तक किसी इंसान की सबसे कम 26 धड़कन प्रति मिनट और सबसे ज्यादा 480 धड़कन प्रति मिटन रिकार्ड की गयी है।
5. हमारा दिल शरीर से अलग होने के बाद भी तब तक धड़कता है जब तक इसे पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन मिलती रहे।
6. हमारा दिल शरीर के सभी कोशिकाओं को खून भेजता है सिर्फ आँखों में पायी जाने वाली कोर्निया कोशिकाओं को छोड़कर।
7. दिल धड़कने पर जो आवाज आती है, वह दिल में पायी जाने वाले 4 वाल्व के खुलने और बंद होने की वजह से बनती है।
8. महिलाओं के दिल की धड़कन पुरूषों की धड़कन से हर मिनट 8 ज्यादा होती है।
9. चार हफ्ते की गर्भावस्था के बाद बच्चे का दिल धड़कने लगता है।
10. नवजात शिशु के दिल की धड़कन सबसे तेज होती है (70–160 बीट/मिनट) और वृद्धावस्था में दिल की धड़कन सबसे धीमी (30–40 बीट/मिनट) होती है।
11. हमारा बांया फेफड़ा दाएं फेफड़े से आकार में छोटा होता है।
12. प्रतिदिन हमारा दिल इतनी ऊर्जा पैदा करता है कि एक ट्रक को 32 किमी तक चलाया जा सकता है।
13. दिल की बीमारी से सबसे ज्यादा लोग तुर्किस्तान में मरते हैं।
14. दिल का दौरा पड़ने की संभावना सबसे अधिक सोमवार की सुबह को हर साल में सबसे अधिक बड़ा दिन के दिन होता है।
15. पुरूषों और महिला देनों में हार्ट अटैक के लक्षण अलग–अलग होते हैं।
16. दिल का कैंसर बहुत कम होता है क्योंकि दिल की कोशिकाएं समय के साथ फैलना बंद कर देती है।
17. 1893 में पहली बार सफल हार्ट सर्जरी हुई।
18. 1950 में पहली सफल कृत्रिम वाल्व डाली गयी।
19. 1967 में पहली बार किसी इंसान का दिल दूसरे इंसान में डाला गया, वह इंसान 18 दिन तक जीवित रहा।
20. 1982 में पहला स्थायी कृत्रिम दिल फिट किया गया।
21. ऑक्टोपस के तीन दिल होते हैं।
22. शरीर के आकार के हिसाब से कुत्ते का दिल सबसे बड़ा होता है।
23. ब्लू ह्वेल का दिल सबसे बड़ा होता है और 590 किग्रा का होता है।
24. सबसे छोटा दिल ततैया का होता है।
25. पायथन साँप का दिल खाना खाते समय बड़ा हो जाता है।

लीची दोहावली – लीची की वैज्ञानिक खेती

सुशील कुमार शुक्ल[1] एवं विशाल नाथ[2]
[1]भा.कृ.अनु.प. – केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ
[2]भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

याद आ रहे हैं प्रथम, गुरूवर रामकृपाल,
जिनसे पाकार ज्ञान मैं, सचमुच हुआ निहाल।।
धारण कर उर में उन्हें, करता कोटि प्रणाम,
लीची दोहावली लिखूं, लेकर प्रभु का नाम।।
लीची सदाबहार तरू, जमकर पैदावार,
आकर्षक रंग स्वाद गुण, देश विदेश बाजार।।
उत्पादन में देश का, है द्वितीय स्थान,
उत्पादकता में प्रथम, रही देश की शान।।
हैं बिहार बंगाल में, उत्तम लीची बाग,
झारखंड व उत्तरांचल, यूपी के कुछ भाग।।
त्रिपुरा असम पंजाब में, फैला खूब प्रक्षेत्र,
हरियाणा भी दिख रहा, नव सम्भावित क्षेत्र।।
यद्यपि प्रति हैक्टेयर मिले, अस्सी कुंतल माल,
पर उत्तम तकनीक से , बढ़े साल दर साल।।
दुगुनी तिगुनी उपज हो, अगर प्रबंधित बाग,
नमी खाद पानी मिले, तब जब बरसे आग।।
ताजे फल खाना सदा, करते लोग पसंद,
शरबत नट वाइन बने, करिये डिब्बाबंद।।
फल उपोष्ण जलवायु का, गर्मी सर्दी आस,
चाहे फल बढ़वार पर, पवन आर्द्रता खास।।
मिट्टी कुछ अम्लीय हो, गहरी दोमट आदि,
जल निकास उत्तम सदा, हो जैविक अंशादि।।
लीची विविध प्रकार की, प्रचलित आज प्रजाति,
कुछ ही व्यवसायिक दिखीं, और पा रहीं ख्याति।।
हैं बेदाना चाइना, शाही प्रचलित खूब,
कहते सेंट्रेड रोज भी, दे आनंद बखूब।।
लीची नहीं है देशीय, पर जननद्रव्य कुछ खास,
अपने शोधन केन्द्र ने, इनका किया विकास।।
गण्डक नदी के पास में, लीची हो आलीशान,
इसीलिए गण्डकी से इसको मिली पहचान।।
किस्में राष्ट्रीय केन्द्र की, है उत्तम और चार,
जिनकी खेती से मिले, ख्याति और व्यापार।।
स्वाद और सुगंध में, इनका नही है जोड़,
बड़े फलों गूदे सहित, लद जाते हैं पेड़।।
सम्पदा के फल बड़े, गूदे बनें अपार,
उच्च सघनता बाग से, योगिता को है प्यार।।
ऊँचे नीचे खेत हों, या हो नया स्थान,
लालिमा के गुण सदा, रहते एक समान।।
बेदाना बस नाम से, मुँह में आवे नीर,
मीठे रस और गोल फल, छोटे होवें बीज।।
पौध प्रवर्धन के लिए, छाँटे उत्तम वृक्ष,
फल गुणवत्ता किस्म के, जांचे सारे पक्ष।।
पकी टहनियों पर सदा, छीलें वलयाकार,
एक इंच का घाव हो, आधा मीटर पार।।
सिरे घाव के ऊपरी, लेपें दवा या चूर्ण,
मास घास नम मोमिया, से बांधे कृत पूर्ण।।
गूटी में जब जड़ दिखे, पत्तों को दे छांट,
शाखा को गूटी सहित, लें चाकू से काट।।
पालीथीन निकालकर, गूटी को दें रोप,
जहां न ज्यादा छांव हो, न हो ज्यादा धूप ।।
गूटी तब बाधें सदा, जब वर्षा शुरूआत,
अधिकाधिक हो सफलता, मौसम में नम वात।।
बाग लगाने के लिये, पहले खेत संभाल,
झाड़ी, वृक्ष अगर दिखें, दें जड़ सहित निकाल।।
ऊँची नीची जोत हो, कर लें सीढ़ीदार,
ढाल ध्यान में रख सदा, दें क्यारी आकार।।
मिट्टी कुछ क्षारीय हो, तो दें जिप्सम डाल,
आधे कुंतल मात्र से, सुधरे भू का हाल।।
लीची रोपण के लिए, पद्धति वर्गाकार,
मीटर छः से आठ ही, दूरी उचित प्रकार।।
अधिक उपज व उचित फल, मिलते हैं अनुकूल,
हेज रो में रोपें अगर, करें न कोई भूल।।
लाइन से लाइन रखें, मीटर आठ या दस,
मीटर चार या पांच पर, पौधे रखें बस।।
रेखांकन कर खेत में, बनते उचित निशान,
गड्ढा खोदें तीन फिट, गहरे और समान।।
आधी मिट्टी इक तरफ, बाकी दूजी ओर,
फिर कुछ दिन तक छोड़ दें, गर्मी में घनघोर।।

हड्डी का चूरा मिले खाद खली अरू फास,
दीमक रोधी चूर्ण मिल, मिश्रण बनता खास।।
गड्ढे भर लें ठीक से, रख छः इंच उठान,
मिट्टी जब बैठे वहाँ, भूतल एक समान।।
वर्षा ऋतु में रोप दें, स्वस्थ सुविकसित वृक्ष,
रोपण कर पानी सदा, देना पहला लक्ष्य।।
मानसून की रितु भली, या फिर मध्य बसंत,
रोपण लीची बाग हित, समय उचित अत्यंत।।
बूंद बूंद पद्धति तथा, अपनायें पलवार,
पानी की अच्छी बचत, साथ पौध बढ़वार।।
वर्षा ऋतु में हो सदा, जल का उचित निकास,
पौधा रहता स्वस्थ व, होता बहुत विकास।।
खूंटी रस्सी से सदा, दिया सहारा जाय,
पौधा भी सीधा बढ़े, खड़े खड़े मुस्काय।।
उत्तर पश्चिम दिशा में, हों दो वृक्ष कतार,
सानुकूल मौसम बनें, फलता बाग अपार।।
शीशम हो या पापुलर, महोगनी सागौन,
बीच करौंदा बेर हो, घुसे बाग में कौन।।
पाले से भी वृक्ष का, समुचित करें बचाव,
पूरब में रखें खुला, यूं झोपड़ी बनाव।।
डंठल मक्का बाजरा, या हो घास पुवाल,
छप्पर छाने हेतु ये, करता खूब कमाल।।
बागों के प्रारम्भ में, अधिक खर्च कम आय,
अंतः फसली लाभ ही, लेना उचित उपाय।।
दलहन तिलहन सब्जियां, जो स्थानी मांग,
फसल उगायें लाभ लें, वरना उगती भांग।।
एक वर्ष के वृक्ष को, मिले दस किलो खाद,
खली खाद भी इक किलो, वृक्ष रहे आबाद।।
फास पोटाश पचीस हो, और नत्रजन पचास,
जस्ता ग्राम पचीस हो, इक साला वृक्षास।।
फिर हर साल बढ़ोत्तरी, जब तक हों दस साल,
नियमित खाद प्रयोग से, रहे वृक्ष खुशहाल।।
हों दस वर्षी वृक्ष गर, साठ किलों दें खाद,
तीन किलो गर हो खली, वृक्ष रहे आबाद।।
नत्र फास छः सौ मिले, ढाई सौ पोटाश,
जिंक और बोरान भी, ढ़ाई सौ ग्रामास।।
वर्षा ऋतु के पूर्व ही, डालें गोबर खाद,
उर्वरक दें जून में, थोड़ा फलत के बाद।।
नत्र और पोटाश का, दो तिहाई भाग,
कृन्तन के पश्चात् ही, दे दें जड़ के पास।।
स्फुर तत्व विशेष है, मिलता धीरे देर,
पूरी मात्रा इसलिए, प्रयोग करें एक बेर।।
एक तिहाई नत्रजन और पोटाश का भाग,
होत सहायक फल बढ़त, दें यदि सिंचन साथ।।
लेश तत्व छिड़काव से, होते फल गुणवान,
फल फटने से भी बचें, और न हो नुकसान।।
लीची का फल मांगता, उत्तम नीर प्रबंध,
फल फटने या वृद्धि से, है सीधा अनुबंध।।
फल टिकने के बाद हो, नियमित नीर प्रयोग,
साथ साथ छिड़काव हो, बने उपज का योग।।
दिखते पुष्प बसंत में, फिर हो फल बढ़वार,
मई जून के मास में, होता फल व्यापार।।
फल के दुश्मन बहुत हैं, माइट कीट पतंग,
इनका समय पर नियंत्रण, फसल होय बहुचंग।।
तेज धूप औ वात पश्चिमी, इनको नही सुहाय,
गर प्रबंध न हो उचित, फल झुलसे फट जाय।।
फल बेधक के कीट जब, बाग में करे प्रकोप,
समझ–बूझ से काम लें, उनको रखें रोक।।
उनको रखें रोक, करें छिड़काव दवाई,
प्रिड इमिडा हो या थिया, स्टीकर दियो मिलाय।।
एक–एक लीटर में सदा, आध–आध हो भाग,
मिलीलीटर का माप हो, बोरर जाये भाग।।
कभी–कभी बागान में, दिखता झुलसा रोग,
इनका समय से नियंत्रण, सुन्दर फल संयोग।।
जब मिठास का ब्रिक्स हो, अट्ठारह के पास,
आधा प्रतिशत अम्लता, तब गुणवत्ता खास।।
फल तोड़ें गुच्छे सहित, रात बाद जब प्रात,
छांट छांट पैकिंग करें, बिना चोट आघात।।
गर लीची के बाग में, मधुमक्खी लें पाल,
उपज वृद्धि के साथ ही, मधु से मालामाल।।
सदा पके फल तोड़कर, करिये छत्र प्रबंध,
सुघड़ दक्ष हो वृक्ष भी, पावन पवन सुगंध।।
धन्यवाद है आपको, ज्ञानी विशद विशाल,
हुई आपके ज्ञान से, दोहावली निहाल।।
मुझे माफ करना अगर, कहीं हो गयी भूल,
कहते दास सुशील ये, कविता रूपी फूल।।

ISO 9001: 2015

राष्ट्रीय लीची
अनुसंधान केंद्र, मुजफ्फरपुर